डाक टिकटो पर जैन इतिहास

Regular Series - Copies

Serial No. 19 to 33

- सुरेश जैन -

साईंटिफिक होज़री
सुन्दर नगर
किंग पैलेस स्ट्रीट
निकट जयपुर गोल्डन
लुधियाना - 141007
(पंजाब - भारत)

M- 94172-26292
E-mail. Sureshjain298@gmail.com

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-19

सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य

-सुरेश जैन, लुधियाना

चन्द्रगुप्त का जन्म ईसा पूर्व 345 में पटना के समीप पाटलीपुत्र में हुआ। इनकी बचपन की अवस्था के बारे में बहुत कम जाना जाता है। इन के पिता का नाम सूर्यगुप्त तथा माता का नाम मुरादेवी था। पिता विप्पलिवन क्षेत्र के गणमुख्य थे। धनानंद की प्रसार निती के कारण इन की स्वतंत्र स्थिति शीघ्र समाप्त हो गई तथा धनानंद ने सूर्यगुप्त को बन्दीगृह के अंधकूप में डाल दिया और मुरादेवी को मगधराज के अंत:पुर की दासी बना दिया। (जैन परिशिष्टपर्वन के अनुसार चन्द्रगुप्त मयूर पोषकों के एक ग्राम के मुखिया की पुत्री से उत्पन्न हुए थे) पिता का सिर पर साया न रहा, माता दासी बन गई इसी कारण चन्द्रगुप्त का मयूर पोषकों, चरवाहों तथा लुब्धकों के संपर्क में पालन हुआ। परम्परा के अनुसार वह बचपन में अत्यंत तीक्षणबुद्धि थे व समवयस्क बालकों का सम्राट बन कर उन पर शासन करते थे। ऐसे ही किसी अवसर पर चाणक्य की दृष्टि उन पर पड़ी, फलत: चन्द्रगुप्त को वह तक्षशिला ले गए, जहां उनको समोचित शिक्षा दी गई, चाणक्य जैसा गुरु प्राप्त होने के बाद चन्द्रगुप्त के जीवन की दिशा ही बदल गई। चाणक्य ने शुरू से ही चन्द्रगुप्त के रोम-रोम में देशभक्ति भर दी थी। इसके पश्चात चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने भारतवर्ष से विदेशी हमलावरों को खदेड़ने तथा उनसे भारतवर्ष को आज़ाद करवाने तथा भारत के अन्य भागों पर मौर्य वंश का शासन स्थापित करने की योजना तैयार की।

भारत विजय अभियान : चन्द्रगुप्त ने सर्वप्रथम अपनी स्थिति पंजाब में सुदृढ़ की, उनका यवनों के विरूद्ध युद्ध सिकन्दर की मृत्यु के कुछ समय बाद लगभग ईस्वी पूर्व 323 में आरंभ हुआ, कुछ स्थानों को विजय करने के बाद ईस्वी पूर्व 322 में उन्होंने मौर्य वंश की नींव डाली व खुद प्रथम शासक बने। अभियान की पूरी सफलता उनको ईस्वी पूर्व 317 में मिली जब पश्चिम पंजाब का यवन शासक **EUDEMUS** अपनी सेनाओ सहित भारत छोड़ कर भागा था। इस सफलता से चन्द्रगुप्त को पंजाब तथा सिंध के प्रांत मिल गए। इसके बाद चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त ने धनानंद को अचिछन्न करने का निश्चय किया। अपनी उद्देश्य सिद्धि के निमित्त एक विशाल विजय वाहिनी का प्रबंध किया तथा नंद साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। सीमांत प्रदेशों से विजय प्राप्त करते हुए उन्होंने अंतत: पाटलिपुत्र को घेर लिया और धनानंद को मार डाला जिससे पूरा नन्द साम्राज्य चन्द्रगुप्त के कब्जे में आ गया। इसके बाद चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का विस्तार दक्षिण तथा पश्चिम में भी किया और सौराष्ट्र को भी विजय किया।

चन्द्रगुप्त का यवनों के विरुद्ध अंतिम युद्ध सिकन्दर के पूर्व सेनापति तथा उनके समकालीन सीरिया के ग्रीक सम्राट सैल्यूकस के साथ हुआ। सैल्यूकस भारत पर विजय करने के लिए आगे बढ़ा, किन्तु भारत की राजनीतिक स्थिति अब तक बदल चुकी थी। लगभग सारा क्षेत्र शक्तिशाली चन्द्रगुप्त शासक के नेतृत्व में

आ चुका था। सेल्यूकस ईस्वी पूर्व 305 के लगभग सिंधु के किनारे युद्ध करने के लिए पहुंचा, घमासान युद्ध के बाद चन्द्रगुप्त की शक्ति के सम्मुख सैल्यूकस को झुकना पड़ा। फलतः सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के साथ अपनी यवनकुमारी का विवाह कर हेरात, कंदहार, काबुल तथा बलूचिस्तान के प्रांत देकर संधि कर ली। अपने साम्राज्य का निरन्तर विस्तार करते हुए चन्द्रगुप्त ने बिहार, उड़ीसा व बंगाल के भू-भाग के इलावा भारत के उत्तर-पश्चिम में कुछ ऐसे क्षेत्रों पर भी शासन किया था जिन पर ब्रिटिश साम्राज्य भी कब्जा नहीं जमा सका था। केरल, तामिलनाडू तथा पूर्वोत्तर भारत के भू-भाग को छोड़कर मौर्यवंश ने पूरे उपमहाद्वीप पर शासन किया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक दूरदर्शी शासक थे, उन्होंने केवल अपनी सीमाओं का ही विस्तार नहीं किया वरन् एक सुसंगठित प्रशासनिक प्रणाली भी स्थापित की और उसे एक सुदृढ़ वित्तीय आधार प्रदान किया, इस प्रकार एक स्थिर साम्राज्य की आधारशिला रखी। प्रजा की खुशी के लिए उच्च आदर्श स्थापित किए जिस का आधार कौंटिलीय अर्थशास्त्र तथा चाणक्य की नीतियां प्रमुख हैं।

चन्द्रगुप्त ने जैन मुनि की दीक्षा ग्रहण की : श्रुतकेवली भद्रबाहु यत्र-तत्र देशों में अपने विशाल संघ के साथ विहार करते हुए उज्जैन पधारे व क्षिप्रा नदी के पास उपवन में ठहरे। सम्राट चन्द्रगुप्त उस समय वहीं प्रांतीय उपराजधानी में ठहरा हुआ था। चन्द्रगुप्त ने रात्रि में सोते हुए सोलह स्वप्न देखे थे, वह आचार्य भद्रबाहु से उनका फल पूछने और धर्मोपदेश सुनने के लिए उन के पास आया और उन्हें नमस्कार कर उनसे धर्मोपदेश सुना, अपने स्वप्नों का फल पूछा। तब आचार्य जी ने बताया कि तुम्हारे स्वप्नों का फल अनिष्ट सूचक है। यहां बारह वर्षों का घोर दुर्भिक्ष पड़ने वाला है। उससे जनधन की बड़ी हानि होगी तथा चन्द्रगुप्त को कहा कि तुमने भारतवर्ष को विजय कर लिया है, अब समय आ गया है कि तुम अपने आप पर विजय पाओ तथा अपने कर्मों को क्षय करने व आगे का जीवन सुधारने के बारे में विचार करो। चन्द्रगुप्त के ऊपर आचार्यजी की बातों का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने तुरन्त अपने गुरु चाणक्य से आज्ञा ली व अपने पुत्र बिन्दुसार को राज्य सौंपकर आचार्य भद्रबाहु से जैन मुनि की दीक्षा ग्रहण कर ली। भद्रबाहु वहां से ससंघ चल कर श्रवणबेल गोला तक आए वहां भद्रबाहु ने कहा मेरा आयुष्य अल्प है अतः मैं यही रहूंगा और संघ को निर्देश दिया कि वे विशाखाचार्य के नेतृत्व में आगे चले जाए। भद्रबाहु श्रुतकेवली होने के साथ अष्टमहानिमित्त के भी पारगामी थे। उन्होंने बारह हजार साधुओं के विशाल संघ को दक्षिण की ओर जाने की अनुमति दी। भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त वहीं चन्द्रगिरी पर्वत पर रह गए। चन्द्रगिरी पर्वत के शिलालेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त का दीक्षा नाम प्रभाचन्द्र था। वह भद्रबाहु के साथ वहीं पर ठहर गए और उन्होंने वहीं पर समाधिमरण किया। भद्रबाहु की समाधि का भगवती आराधना में उल्लेख मिलता है। एक गाथा में बतलाया गया है कि भद्रबाहु ने अवमौदर्य द्वारा न्यून भोजन की घोर वेदना सहकर उत्तार्थ की प्राप्ति की। चन्द्रगुप्त ने अपने गुरु की बहुत सेवा की। भद्रबाहु के दिवंगत होने के बाद श्रुतकेवली का अभाव हो गया क्योंकि वह पांचवें तथा अंतिम श्रुतकेवली थे। श्वेतांबर परम्परा के अनुसार भद्रबाहु के गुरुभाई संभूति विजय के शिष्य स्थूलभद्र को अंतिम श्रुतकेवली माना जाता है।

गुरु के दिवंगत होने के बाद चन्द्रगुप्त ने घोर तप किया तथा अंतिम समय में संथारा (संल्लेखना) लेकर शरीर का त्याग किया। श्रवणबेल गोला की जिस पहाड़ी पर उन्होंने अपना अंतिम समय बिताया

इसका नाम चन्
बने हुए हैं। च
उत्कीर्ण) के म
चित्रकला का अ
(शासक) दिगं

सम्राट च
टिकट जारी की
कलकत्ता सिक्
चन्द्रगुप्त मुकट ध
चारों और तीरव
समय की सील
है। इस डाक ति
स्टेनले गिब्बस
अमेरिका से छप
पर दिया गया है
है।

इसका नाम चन्द्रगिरी पर्वत है और वहां एक मंदिर है, जिसका नाम चन्द्रगुप्त वसदि है, वहां पर इनके चरण बने हुए हैं। चन्द्रगुप्त वसदि में आचार्य भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त की कथा का पाषाण चित्र (पत्थर पर उत्कीर्ण) के माध्यम से उनकी दक्षिण भारत यात्रा और गुरु भक्ति को दिखाया गया है। यह चित्र पाषाण चित्रकला का अद्भुत नमूना है। चन्द्रगुप्त अंतिम मुकुटधारी मुनि हुए हैं, उनके बाद और कोई मुकटधारी (शासक) दिगंबर मुनि नहीं हुए।

सम्राट चन्द्रगुप्त पर डाकटिकट : 21 जुलाई 2001 को सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के चित्रवाली एक डाक टिकट जारी की गई थी, 6 रंगों वाली इस डाक टिकट को मैटक्रोमो पर फोटो ऑफसेट प्रिंटिंग द्वारा कलकत्ता सिक्योरिटी प्रिंटर्स लि. द्वारा तीस लाख संख्या में छपवाया गया था। टिकट के ऊपर सम्राट चन्द्रगुप्त मुकट धारण कर सिंहासन पर बैठे हैं तथा उनके चारों और तीरकमान, सूर्य, अनाज की बाली तथा उस समय की सील चित्रित है। नीचे चन्द्रगुप्त मौर्य लिखा है। इस डाक टिकट का विवरण इंग्लैंड में छपने वाले स्टेनले गिब्बस केटालाग में **S.G. NO.1838** तथा अमेरिका से छपने वाले स्काट केटालाग में नम्बर 1899 पर दिया गया है। इस डाक टिकट का मूल्य 400 पैसे

डाक टिकटों पर जैन
इतिहास क्रमांक : 20

फिल्म निर्माता डॉ. व्ही शांताराम

V. SHANTARAM

फिल्मनिर्माता, निर्देशक, कलाकार डॉ. व्ही शांताराम का पूरा नाम राजाराम वाणकुद्रे शांताराम था। इनका जन्म 18 नवम्बर 1901 को कोल्हापुर के एक निर्धन महाराष्ट्रियन जैन परिवार में हुआ था। परिवार आर्थिक अभावों से त्रस्त था, जिस कारण इनको बहुत कम विद्या प्राप्त हुई तथा छोटी सी आयु में ही इनको बम्बई आना पड़ा, जहाँ छोटे-छोटे कार्य किये, जिससे कम-से-कम अपना खर्च निकाल सकें। बचपन में वे नाटकों में काम किया करते थे, गंधर्व नाटक मंडली में कुछ समय काम करने के बाद वे उस समय के जाने-माने फिल्मकार बाबूराव पेंटर के ग्रुप से जुड़ गये ताकि खुद को दमदार बना सकें। बाबूराम पेंटर के स्टूडियो में व्ही शांताराम की हैसियत एक वार्ड बॉय से अधिक नहीं थी, जहाँ उनसे हर छोटा-मोटा काम लिया जाता था। छोटा काम करने के बावजूद वे कभी निराश नहीं हुए, क्योंकि उनके अन्दर हर काम में पारंगत होने का जुनून था। उनकी सूझबूझ अन्य लोगों से अधिक थी, इसलिए रंगमंच के हर पक्ष जैसे अभिनय, मंचसज्जा, प्रकाश व्यवस्था वेशभूषा, रूप सज्जा आदि की अच्छी जानकारी बहुत जल्द हासिल कर ली। उनकी लगन और प्रतिभा से प्रभावित होकर बाबूराव पेंटर ने उनका ओहदा बढ़ा कर उन्हें प्रोडक्शन असिस्टेंट बना दिया। फिर वे अभिनय भी करने लगे 1921 में बनी "सुरेखा हरण" में उन्होंने पहली बार अभिनय किया। ई. सन् 1929 में जब शांताराम को ऐसा लगा कि वे अब स्वतंत्र रूप से कार्य करने योग्य हो गये हैं, तो उन्होंने अपने चार अन्य सहयोगियों के साथ मिल कर प्रभात प्रोडक्शंस नाम की कम्पनी की स्थापना कर ली और शुरू हुआ फिल्म निर्माण, उन्होंने फिल्म बनाई "शकुंतला", शांताराम ऐसे फिल्मकार

❋
श्री सुरेश जैन
❋

थे जिनकी फिल्मों में यह कोशिश होती थी कि दर्शकों को मनोरंजन के साथ-साथ जीवनोपयोगी संदेश भी दिया जाये। सामाजिक विषयों पर उन्होंने एक से बढ़कर एक फिल्में बनाई। डॉ. कौटनिस की अमर कहानी बनाने के बाद इनकी ख्याति पूरे देश में फैल गई। 'अमरज्योति', 'आदमी,' 'पड़ोसी', 'दहेज', 'तूफान' और दीया, 'झनक-झनक पायल बाजे,' 'दो आँखें बारह हाथ', 'नवरंग', 'जल बिन मछली नृत्य बिन बिजली', 'गीत गाया पत्थरों ने,' 'बूंद जो बन गई मोती' जैसी फिल्मों की एक लम्बी सूची है। अपने सात दशक से भी अधिक के गौरवशाली सिने जीवन में डॉ. व्ही शांताराम ने 105 फिल्में बनाई तथा सिने माध्यम का सामाजिक संदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए उपयोग किया। उनकी सिने पारखियों तथा आम जनता दोनों ने सरहाना की। फिल्में समाज बनाती हैं, और इनसे समाज का विकास भी होता है, फिल्में लोगों को सही रास्ता दिखाने का अच्छा माध्यम हैं। इसी सोच से अपनी फिल्मों का निर्माण करते थे व्ही शांताराम। यही वजह है कि उनकी तमाम फिल्मों ने एक इतिहास रचा है।

फिल्मों में एक वार्ड ब्वॉय की हैसियत से अपना करियर शुरू किया और अंत में बड़े फिल्मकार बने। उन्हें जो यश, सम्मान और सिने जगत् में एक अलग स्थान मिला, उसके पीछे उनकी समर्पित भावना, बुलंद इरादे और अथक मेहनत थी। उनकी कृति 'दो आँखें बारह हाथ' का लोहा आज भी दुनिया मानती है, जो कैदियों से काम करवा कर उन्हें सुधारने की बात करती है। 'दो आँखें बारह हाथ' का गीत 'ऐ मालिक तेरे बंदे हम..... को तो हमारे छात्र-छात्राओं ने प्रार्थना के रूप में अपना लिया है। इस फिल्म को सर्वश्रेष्ठ फिल्म के लिए राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक तथा राष्ट्रीय स्तर पर अनेक अन्य पुरस्कार तो मिले, साथ ही विदेशों में भी इसकी प्रशंसा की गई।

व्ही शांताराम की फिल्में अपनी दृश्यात्मक सुंदरता तथा सशक्त कथानक के लिए विख्यात थी। उनकी फिल्मों के विषय अलग-अलग होते थे, जिन्हें वे समसामयिक जीवन तथा साथ ही पौराणिक कथाओं से लेते थे। ब्रिटिश शासकों के कठोर सेंसरशिप के बावजूद, यहाँ तक कि 1930 और 1940 के उथल-पुथल भरे दशकों में भी युवा शांताराम अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को फिल्मों के माध्यम से अभिव्यक्त करने से कभी नहीं घबराये। अपनी फिल्मों में उन्होंने छुआछूत, गरीबी आदि जैसे सामाजिक विषयों को भी उठाया। वे एक उपक्रमशील फिल्म निर्माता थे, विश्व में अन्यत्र हो रही प्रौद्योगिकीय प्रगति से फिल्म उद्योग को बराबर परिचित करवाते रहे। उनकी फिल्म 'धर्मात्मा' (1935) 'संततुकाराम' (1936) तथा 'आदमी (1939) को मात्र व्यावसायिक सफलता

ही हासिल नहीं हुई वरन् समालोचकों द्वारा भी इनकी सराहना की गई। हिन्दी के साथ ही 1930 में एक अंग्रेजी फिल्म 'थंडर आफ द हिल्स' में भी उन्होंने अभिनय किया और 1933 में निर्मित पहली रंगीन फिल्म 'सैरंधी' बनाई।

इनकी शादी विमला के साथ हुई थी, 1942 में उन्होंने फिल्म अभिनेत्री जयश्री से शादी कर ली, जिस कारण उनकी प्रभात प्रोडक्शन के अन्य साथियों के साथ अन-बन हो गई अत: उन्होंने प्रभात प्रोडक्शन को छोड़ दिया तथा अपना अलग से बड़ा सुन्दर तथा माडर्न स्टूडियो 'राजकमल' नाम से बनवाया। फिर 1952 में इन्होंने जयश्री को छोड़ दिया तथा अपनी फिल्म की हीरोइन संध्या से शादी रचाली। संध्या के साथ इन्होंने उस समय की सफलतम फिल्मों का निर्माण किया। इस सबके बावजूद भी इनकी पहली पत्नी विमला पूरी जिन्दगी भर इनकी कानूनी धर्मपत्नी बन कर रही।

व्ही शांताराम का 30 अक्टूबर 1990 को 90 वर्ष की आयु में निधन हो गया। इनको बहुत से अन्य राष्ट्रीय पुरस्कारों के अलावा सबसे अधिक सम्मानित पुरस्कार महाराष्ट्र में ''जैन समाजरत्न'' की पदवी से अलंकृत किया गया तथा नागपुर विश्वविद्यालय से डाक्ट्रेट की मानद उपाधि मिली, दादा साहिब फालके अवार्ड 1985 में मिला तथा मरणोपरांत 1992 में इन्हें पद्मविभूषण पुरस्कार दिया गया।

व्ही शांताराम पर डाक टिकट

डॉ. व्ही शांताराम पहली जैन फिल्मी हस्ती थे जिनके चित्रों वाला एक स्मारक डाक टिकट 17-11-2001 को भारतीय डाक विभाग ने जारी किया था। 400 पैसे मूल्य वाले इस 4 रंगी डाक टिकट को 4 लाख संख्या में कलकत्ता सिक्यूरिटी प्रिंटर्स लि. द्वारा मेट क्रोमो पेपर पर फोटो ऑफसेट मुद्रण प्रक्रिया द्वारा छापा गया था। डाक टिकट की आधी साइड पर शांताराम का टोपी पहना हुआ आधा चित्र तथा आधी साइड पर पूरा चित्र फिल्म की शूटिंग के दौरान लिया गया, दर्शाया गया है, नीचे हिन्दी और अंग्रेजी में डॉ. व्ही शांताराम लिखा है। टिकट के दोनों ओर चलचित्र की तरह सुराख दिखाये गये हैं। इस डाक टिकट का विवरण इंगलैंड से छपने वाले स्टेनले गिब्ब्स केटालाग में एस.जी. नम्बर 1874 पर तथा अमेरिका से छपने वाले सकाट केटालाग में नम्बर 1927 पर दिया गया है।

♦♦

सूर्य की किरणें अपने आप में बाहरी प्रकाश की सर्वश्रेष्ठ साधन स्वरूपा हैं। उनमें गहन से गहन बाह्य अन्धकार दूर करने की सहज क्षमता है। वैसे ही धर्मक्रियाएँ अपने आप में आन्तर् प्रकाश की सर्वश्रेष्ठ साधन-स्वरूपा हैं। इनमें गहन से गहन आन्तरिक कर्मों के अन्धकार को दूर करने की सहज क्षमता है।

डाक टिकटों पर जैन इतिहास-21

आचार्यश्री आनंद ऋषि जी महाराज

-सुरेश जैन लुधियाना

वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के द्वितीय आचार्य पूज्य श्री आनंद ऋषि जी महाराज का जन्म महाराष्ट्र प्रांत में अहमदनगर के समीप चिंचौड़ी ग्राम में सन् 1900, जुलाई 26 दिन शुक्रवार को हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती हुलासा बाई तथा पिता का नाम श्री देवीचंद जी गुगलिया था, इनकी अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति थी। आनंदऋषि जी का बचपन का नाम नेमीचंद था तथा प्यार से इन्हें गोटीराम कहते थे। बचपन में पिता के देहावसान का कारुण्य दृश्य जो उन्होंने अपनी आंखों से खुद देखा था तथा माता जी की धर्ममयी शिक्षाएं नेमीचंद को संसार से विरक्ति के मुख्य कारण बने। जिस उम्र में खेलना, कूदना, मस्ती करना होता है उसी शैशव काल में नेमीचंद संत समागम में भजन कीर्तन में, अध्यात्म की ओर लीन रहने लगे। उम्र के केवल 13वें साल में माता हुलासा बाई ने केवल एक लाईन में दीक्षित होने की आज्ञा दे दी तथा पूज्य श्री रत्नऋषि जी महाराज के सान्निध्य में मिरिग्राम में दीक्षा ग्रहण करने के बाद नेमीचंद से आनंदऋषि बन गए। इनकी दीक्षा सन् 1913 में माघ शुक्ला नवमी रविवार को हुई। दीक्षा ग्रहण कर संत जीवन में प्रवेश करते ही उन्होंने जैन तथा जैनेत्तर आगमों व धर्म ग्रंथों का गहन अध्ययन शुरु किया।

कठोरतम अनुशासन में रहने तथा शास्त्रों का गहन अध्ययन करने के कारण इनके धार्मिक जीवन में बड़ा निखार आ गया, सारी उम्र के लिए इन्होंने अध्यात्म की खोज व मानवता की सेवा में जीवन बिताने के अपने दृढ़ संकल्प को औपचारिक रूप दे दिया। आनंदऋषि जी महाराज ने जैन धर्मग्रंथों के साथ-साथ संस्कृत के प्राचीन दार्शनिक ग्रंथों पर भी सुविज्ञता हासिल की। इन्होंने मराठी और हिन्दी में व्यापक रूप से लेखन कार्य किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ज्ञान से पुष्ट मनुष्य अपनी राह से नहीं भटक सकता। इसलिए यह आवश्यक है कि हर मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करे।

सन् 1927 में आपश्री के गुरु रत्नऋषि जी महाराज स्वर्ग सिधार गए परन्तु आनंदऋषि जी ने गुरु के कहे हुए शब्दों को सारी जिन्दगी याद रखा, उन्होंने कहा था कि कभी भी जिन्दगी में उदास मत होना तथा सदैव सबकी भलाई का कार्य करना। आनंदऋषि जी ने प्रण किया कि उनका कभी कोई चेहरा उतरा हुआ नहीं देखेगा, जिन्दगी में कितनी भी परेशानियां आई हों, कितने भी तूफान आए हों, चाहे शरीर पीड़ा से पीड़ित हो गया हो, चाहे लोगों का व्यवहार कितना भी रुखा हो गया हो, लेकिन उन्होंने कभी चेहरे पर परेशानियों को झलकने नहीं दिया, सदा मुस्कराते रहे आनंद।

सन् 1927 से 1931 तक उनकी महाराज श्री चौथमल जी सहित अनेक बड़े-बड़े संतों से धार्मिक विषयों पर वार्ता होती रहती थी तथा सब इनकी बुद्धि के कायल हो जाते थे। इनकी तीक्ष्ण बुद्धि को देख कर इन्हें ऋषि संप्रदाय ने सन् 1936 में युवाचार्य तथा सन् 1942 में आचार्य नियुक्त किया। वे जीवन की जिस

ऊंचाई पर पहुंचे, सहज में ही नहीं पहुंचे थे, दीर्घकाल तक तपस्या से हो कर गुजरे, यथार्थ की कठोर असिधारा पर चलकर उन्होंने जीवन का निर्माण किया। छोटा कद, सादा जीवन, खादी के वस्त्र, ऊंची सोच, गहरा अध्ययन, समन्वयात्मक प्रकृति, दीर्घ दृष्टा, धीरता, वीरता तथा गंभीरता के संगम थे वे।

आचार्यश्री ने समाज-संगठन को लक्ष्य में रख कर अपने संप्रदाय के मोह को छोड़कर, संघ को, साधु समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिए, संगठित करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी, वह जहां भी जाते साथी मुनिराजों के साथ संघ को, समाज को संगठन का पाठ पढ़ाने लगे। संगठन का शंखनाद समाज में असर लाया, परिणाम स्वरूप कई सम्मेलन व गोष्ठियां हुई, विचार-विमर्श दीर्घकाल तक चलता रहा। अंत में युगान्तकारी घटना हुई।

श्रमण संघ का जन्म हुआ। साधु समाज के इतिहास में यह एक महान घटना थी। विघटन और साम्प्रदायिकता के युग में श्रमण संघ का जन्म होना, अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इसके फलस्वरूप सन् 1952 में सादड़ी (राजस्थान) में साधु सम्मेलन हुआ जिसमें करीब-करीब समाज के समस्त संप्रदायों के प्रमुख संतों ने भाग लिया और फैसला हुआ। किसी एक संत को प्रधानाचार्य चुना जाए। सबसे पहले श्रमण संघ के गठन के लिए अपने समुदाय का आचार्य पद त्यागने वाले आनंदऋषि जी ही थे। इसके बाद एक-एक संप्रदाय के आचार्य ने भी अपने पद का विर्सजन कर दिया और उन्होंने इस विशाल संघ के प्रथम आचार्यपद का भार आगम दिवाकर, स्वनामधन्य, समतायोगी, आचार्यश्री आत्मारामजी महाराज को सर्वानुमति से सौंपा। जबकि आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज इस साधु सम्मेलन में आंखों की रोशनी चले जाने के कारण व्यक्तिगत रुप से उपस्थित नहीं हुए थे। इसी साधु सम्मेलन में श्री आनंदऋषि जी महाराज को उनकी योग्यता के कारण वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के देवलोक गमन के उपरांत समस्त समाज तथा साधुओं ने एक स्वर से प्रधान आचार्य पद के लिए श्री आनंद ऋषि जी के नाम का अनुमोदन किया तथा 13 मई 1964 को इन्हें आचार्य सम्राट पद की चादर अजमेर में दे कर द्वितीय पट्टधर आचार्य पद से विभूषित किया गया। आचार्यश्री जी ने अपनी दूरदर्शिता, कार्य कुशलता से श्रमण संघ को एकता के सूत्र में आबद्ध किया।

13 फरवरी 1975 को पूना पधारने पर आचार्यश्री आनंदऋषि जी महाराज का भव्य स्वागत किया गया तथा महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री वसन्तराव नायक ने इन्हें राष्ट्र संत की उपाधि से सम्मानित किया। यह उन के जन्म का 75वां वर्ष था। सन् 1987 में उनकी दीक्षा की हीरक जयंती मनाई गई जिसमें पूज्य श्री शंकराचार्यजी तथा उस समय के महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री शंकर राव चव्हाण ने विशेष तौर पर भाग लिया।

आचार्य बनने के बाद इन्होंने महाराष्ट्र से लेकर जम्मू-कश्मीर तक भ्रमण किया तथा जगह-जगह चार्तुमास किए। इनके अनुयाई इन्हें गुरुदेव अथवा आनंद बाबा कह कर पुकारते थे। आचार्यश्री जी को अपनी मातृभाषा मराठी समेत 9 भाषाओं का ज्ञान था जिसमें इन्होंने ऊर्दू भाषा का ज्ञान 83 वर्ष की आयु में धरती पर बैठकर एक मौलवी से प्राप्त किया।

आनंदऋषि जी महाराज ने अपने जीवन काल में 15 संस्थाओं की स्थापना की, जिन में श्री रत्न जैन

पुस्तकालय, श्री त्रिलोक जैन विद्यालय और श्री अमोल सिद्धांत शाला, पाथर्डी (अहमदनगर) के इलावा पूना अस्पताल में एक ब्लड बैंक और पुणे में आनंद प्रतिष्ठान नामक एक मानवीय संस्था शामिल है। समाज के कमजोर गरीब वर्गों के लिए हाई स्कूल, कालेज और छात्रालय प्रारंभ किए और वर्तमान में भी निर्धन बच्चों का विकास हो रहा है। वैसे प्राकृत विद्यापीठ और प्राकृत भाषा को महत्व देकर हजारों विद्यार्थी उसका लाभ उठा रहे हैं। उन्होंने बदहाली झेल रही कई संस्थाओं को नया जीवन दिया और कई पत्रिकाएं भी शुरु की। आचार्यश्री जी के पांव के मध्य में पद्म का चिन्ह था, वह सिर्फ अपने उन अनुयाईयों को दिखाते थे जो अपनी कोई भी बुरी आदत को छोड़ दे या जीवन भर के लिए कोई भी प्रण ले लें।

पूज्यश्री जी की वाणी आनंद प्रवचन 13 भागों में उपलब्ध है। मराठी भाषा में इनके 8 ग्रंथ प्रकाशित हुए है। इन्होंने जीवन काल में कुल 78 चातुर्मास किए तथा प्रधान आचार्य पद पर 30 वर्ष रहे।

आचार्य श्री आनंदऋषि जी महाराज का 28 मार्च 1992 को अहमदनगर में महाप्रयाण हो गया। उन्होंने मृत्यु को समीप देखते हुए संथारा ले लिया। हर वर्ष उनकी पुण्य तिथि के उपलक्ष में 21 मार्च से 28 मार्च तक एक सप्ताह के लिए बड़े-बड़े विद्वानों के भाषण तथा संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है।

आचार्य श्री आनंदऋषि पर डाक टिकट : स्थानकवासी श्वेताम्बर श्रमण संघ के द्वितीय आचार्य सम्राट पूज्य श्री आनंदऋषि जी महाराज के चित्र वाली एक डाक टिकट भारत सरकार ने 9 अगस्त 2002 को उनकी 10वीं पुण्यतिथि पर उनके सम्मान में जारी की थी। 400 पैसे वाली यह डाक टिकट 4 रंगों में छापी गई थी जिसे 4 लाख संख्या में कलकत्ता सिक्यूरिटी प्रिंटर्स लि. से छपवाया गया था। इस डाक टिकट के ऊपर आचार्यश्री जी का चित्र मल्टीकलर में छाया गया है। पृष्ट भूमि में हलके ग्रे रंग के ऊपर सफेद चक्र दर्शाया गया है जिसमें 24 आरे हैं जो 24 तीर्थंकरों के घोतक हैं। डाक टिकट के नीचे हिन्दी तथा इंगलिश में आनंदऋषि महाराज लिखा है। सबसे नीचे जारी करने का वर्ष 2002 लिखा है। चक्र के ठीक ऊपर भारत व **INDIA** लिखा है।

इस डाक टिकट का विवरण इग्लैंड से छपने वाले स्टेनले गिबसन केटालाग में **S.G. No. 1914** पर तथा अमेरिका से छपने वाले स्काट केटालाग में नम्बर 1963 तथा कामनवेल्थ देशों के स्टेम्प केटालाग में

डाक टिकटों पर जैन
इतिहास क्रमांक : 22

डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री

❋

श्री सुरेश जैन
लुधियाना

❋

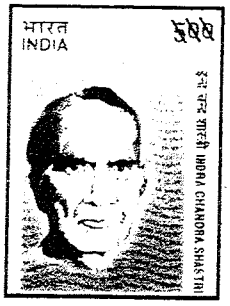

जन्म व शिक्षा - इस समय हरियाणा प्रांत के सिरसा जिले की मण्डी डबवाली में 27 मई 1912 को इन्द्र चन्द्र का जन्म हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आगे शिक्षा ग्रहण करने के लिए बीकानेर चले गये जहाँ इन्होंने संस्कृत तथा प्राकृत का अध्ययन किया। इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी तथा बड़े धार्मिक विचारों वाले व्यक्ति थे। अपने जीवन में अध्यात्मवाद का अनुसरण करने वाले वे जैन अनेकांत से बड़े प्रभावित थे। बीकानेर में पढ़ने के बाद इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में 'एम.ए' की डिग्री हासिल की तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदांत में 'शास्त्राचार्य' की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से 'शास्त्री' और कलकत्ता से 'न्यायतीर्थ' की उपाधि प्राप्त की। पंडित बाल कृष्ण मिश्र के मार्गदर्शन में इन्होंने 'पीएच.डी.' की उपाधि प्राप्त की। शास्त्री की उपाधि मिलने के बाद इनके नाम के पीछे शास्त्री लग गया तथा पीएच.डी. की उपाधि मिलने के बाद इनके नाम के आगे डॉक्टर लग। गया इस प्रकार वे सारी ज़िंदगी डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध रहे।

'एपिस्टेमॉलॅजी ऑफ जैन आगम्स' (जैन आगमों के सच्चे ज्ञान का अध्ययन) पर इनके शोध निबंध की बड़ी प्रशंसा की गई। जिसमें इनका तुलनात्मक अध्ययन है। इसमें रूढ़िवादिता और वास्तविकता और इन दोनों की सहमति और असहमति के मुद्दों का जिस परिपक्वता से आकलन किया गया है, वह निश्चय ही इनको जैन धर्म अध्ययन के अग्रणी व्याख्याकार के रूप में ख्याति प्रदान करता है। इस अध्ययन में एक स्वस्थ दृष्टिकोण और हठधर्मिता से मुक्ति की झलक मिलती है।

ज्ञान - अज्ञानता व मतांधता के तम् को मिटाती तथा जिज्ञासुओं में जागृति उत्पन्न करने वाली अखंड ज्योतिस्वरूप अमिट छाप छोड़ने वाले डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री की ज्ञानशक्ति, उनका व्यक्तित्व और वास्तव में उनका सम्पूर्ण जीवन इस तेजस्विता का प्रतीक था। भारतीय ज्ञान शक्ति की जीती-जागृती प्रतिमूर्ति कहे जाने वाले एक दार्शनिक, असाधारण लेखक तथा महान् कवि, दर्शन, धर्म, संस्कृति, भारत-विद्या, भाषा-विज्ञान, व्याकरण, ज्ञान-मीमांसा आदि में पारगंत थे। उनके महत्त्वपूर्ण योगदान के

प्रमाण पालि, प्राकृत दर्शन (पूर्वी तथा पश्चिमी) भारतीय इतिहास, यूरोपीय भाषाओं आदि क्षेत्रों में प्राप्त हो जाते हैं। वे एक अथक तथा बहुज्ञ विचारक थे जिनकी विलक्षण कल्पनाशक्ति में सारगर्भित चिंतन का संगम था। उन्होंने लेखन पर विद्वत्ता की गहरी छाप छोड़ी।

साहित्य - इन्होंने मध्ययुगीन दर्शन पद्धति तथा शास्त्रीय रूढ़िवादिता पर 70 पुस्तकें तथा 600 शोध पत्र लिखे। इन्होंने प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों के ज्ञान का सार निकाल कर उसे आधुनिक परिवेश में पेश किया। इनकी 'पालि भाषा और साहित्य' में तीन प्रस्तावनाओं की श्रृंखला है। विलहेम गाइगर लिखित प्रसिद्ध जर्मन कृति 'पालि लिट्राटर अंद स्प्राशे' की भूमिका का हिन्दी अनुवाद किया। डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री ने शताब्दियों से प्रचलित चिंतन धाराओं का तटस्थ आलोचनात्मक विश्लेषण किया। मृतप्राय मान्यताओं को तोड़ने के लिए तर्क को आवश्यक साधन मानते हुए भी इन्होंने मौलिक चिंतन-संरचना को अपनाया। उन में एक अन्वेषक और सुधारक का अविरल उत्साह था। इसके प्रमाण उनकी कृतियों RELIGIOUS SHOPS (धर्म की दुकानें) और ''GHOST OF CULTURE'' (धर्म के ठेकेदार) में उजागर होता है। उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियों में 'संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, 'महाभारत के सूक्तिरत्न', 'आलोक और उन्माद', 'हमारी परंपरा,' धर्म और राष्ट्र निर्माण, 'भारतीय आर्य भाषाएँ', 'जैनिज्म एंड डेमोक्रेसी' (जैन धर्म तथा प्रजातंत्र) आदि शामिल है।

समाज सुधार - 1942 में उन्होंने बाल दीक्षा के विरुद्ध अभियान चलाया था। उस समय प्रचलित इस प्रथा के अंतर्गत जैन साधु राजस्थान में गरीब बच्चों को बाल्यकाल में ही दीक्षित कर लेते थे। उन्होंने अपने अभियान में इस बात पर जोर दिया कि कोई भी जैन साधु छोटी उम्र में किसी को भी दीक्षित न करे। इनके इस सफल अभियान के फलस्वरूप बीकानेर विधान सभा में एक विधेयक प्रस्तुत हुआ जिसमें पास हुआ कि जैन साधु किसी नाबालिग गरीब को बाल दीक्षा नहीं देंगे।

इनके ऊपर महात्मा गाँधी का बड़ा प्रभाव रहा तथा इन्होंने देश के स्वतंत्रता संग्राम में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। विभाजन के दौरान इन्होंने सहायता शिविर भी लगाए। वे संगठनात्मक गतिविधियों में भी शामिल रहे। वे एक साहसिक तथा समर्पित व्यक्ति थे और बुद्धिवाद के सदैव समर्थक रहे।

उपलब्धियाँ - 1954-58 तक वे अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के सचिव रहे। 1957 में इन्होंने आल इंडिया ओरियंटल कॉन्फ्रेंस के दिल्ली सत्र का आयोजन किया। दिल्ली, उज्जैन तथा राजगीर के विश्वधर्म सम्मेलन में वे मुख्य वक्ता थे। 1959 में वे देहली विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर अध्ययन संस्थान में संस्कृत के पहले विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। आँखों में ग्लूकोमा आने के कारण इनकी दृष्टि चली गई तथा 1961 में इन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। दृष्टि चले जाने के बावजूद उनके विपुल उद्गारों का प्रवाह नहीं थमा और वे श्रुतलेख के माध्यम से अपने भावों और विचारों को महान् कृतियों का रूप देने लगे। तत्पश्चात् UNIVERSITY GRANTS COMMISION की एक योजना के अंतर्गत उन्हें

अवकाश प्राप्त प्रोफेसर नियुक्त किया गया। 1967-69 के दौरान उन्होंने 'धर्म और आधुनिक मनुष्य' पर शोध किया। आमंत्रित वक्ता के रूप में वे अनेक विभागों से संबन्ध रहे। इनके बारे में विद्वानों का मत है कि वे सम्पूर्ण ज्ञान के सागर थे।

सम्मान - इन्होंने अपनी असाधारण बुद्धि से सदैव दूसरों का पथप्रदर्शन किया। इनकी प्रतिभाशाली व रचनात्मक सेवाओं तथा साहित्य के प्रति महान् प्रयासों और सृजनात्मक प्रतिभा के सम्मान में हिन्दी अकादमी ने इन्हें 'साहित्य सेवा सम्मान' प्रदान किया था। देहली विश्वविद्यालय के उप-कुलपति द्वारा इनको 'साहित्य रत्न अलंकरण' सम्मान दिया गया तथा भारत के राष्ट्रपति ने 15 अगस्त 1986 को इनकी साहित्य सेवाओं के लिए CERTIFICATE OF HONOUR प्रदान किया।

साहस और समर्पण की प्रतिमूर्ति डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री मनुष्य के व्यक्तिगत से वैश्विक और मानवतावादी होने तक की आध्यात्मिक यात्रा के हिमायती थे। इनका 74 वर्ष की आयु में 3 नवम्बर 1986 को निधन हो गया। इनके जीवन का सफर सत्य का तीर्थाटन था।

डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री पर डाक टिकट

महान् समाज सुधारक, साहित्यकार तथा दार्शनिक डॉ. इन्द्र चन्द्र शास्त्री के चित्र वाली एक स्मारक डाक टिकट भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा इनके 92 वें जन्म दिवस पर 27 मई 2004 को जारी की थी। बिना जल चिह्न वाले कागज पर हरे रंग, काले रंग तथा हरे-नीले रंग को मिला कर 4 लाख संख्या में छापा गया था। इसका मुल्य 500 पैसे है। इस डाक टिकक क विवरण इंगलैंड से छपने वाले स्टेनले गिब्णस केटालाग में नम्बर 2048 पर, अमेरिका से छपने वाले सकाट केटालाग में नम्बर 2061 पर तथा कामनवेल्थ देशों के केटालाग में नम्बर 1654 पर दिया गया है। ♦♦

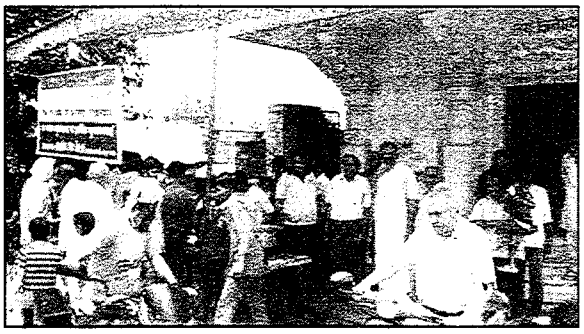

आचार्य यशोभद्र सूरि जी द्वारा शासन प्रभावना

ज्योतिष विद्वान् आचार्य श्रीमद् विजय यशोभद्र सूरीश्वरजी तथा मुनि प्रियरत्न विजय जी की मांगलिक निश्रा में 15 मई 2015 के दिन अम्बाला में संक्रान्ति महोत्सव मनाया गया। तत्पश्चात् उनका विहार यमुना नगर की ओर हुआ। 19 मई को उनका विहार रुड़की की ओर हुआ जहाँ पर पतंजलि योगपीठ के पास रुड़की जैन उपाश्रय में 22 मई से वे विराजमान हैं। 18 जून 2015 तक उनकी स्थिरता वहीं रहेगी।

डाक टिकटों पर जैन इतिहास-क्रमांक 23

आचार्य भिक्षु

-सुरेश जैन

आचार्य भिक्षु का जन्म विक्रम संवत् 1783 आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को राजस्थान के पाली जिले के कंटालिया ग्राम में श्रीमती दीपां जी की कुक्षी से हुआ था। इनके पिता का नाम शाह बल्लु जी था। इनका विवाह पड़ोस के गांव की सुगणी बाई से हुआ था। अपने पिता और पत्नी के अल्पावधि में ही आकस्मिक देहांत हो जाने के कारण इनका मन विरक्त हो गया तथा इन्होंने आचार्यश्री रघुनाथ जी के मार्ग दर्शन में दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा लेते ही इन्होंने अपनी तीव्र बुद्धि से धर्म ग्रंथों का गहन अध्ययन शुरु किया तथा अपने आसपास के वातावरण को शास्त्रों के अनुकूल नहीं पाया।

संसार का धार्मिक इतिहास इस बात का गवाह है कि जब कभी समाज में धार्मिक ह्रास हुआ है, तब ही बौद्धिक और सामाजिक सांस्कृतिक अशांति का कारण बनी है। ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म, सिख धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म आदि धार्मिक रूढ़िवादिता के प्रतिक्रिया स्वरूप धार्मिक सुधार के ध्येय से विश्व में इन मतों का अभ्युदय होना ही इसके सभी उदाहरण हैं। जैन धर्म के श्वेतांबर तेरापंथ संप्रदाय के संस्थापक आचार्य भिक्षु भी क्रांतिकारी विचारधारा के महापुरुष थे जिन्होंने प्राचीन ग्रंथों के गूढ़ अध्ययन के उपरांत जब यह समझ लिया कि लोग इनकी गलत व्याख्या करते हैं तथा समाज में इनके विकृत रूप ही प्रचलित है। तब वह इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने को प्रेरित हुए। आचार्य भिक्षु महान आध्यात्मिक व्यक्ति थे। वह जिस लक्ष्य से घर छोड़ कर आए थे, उससे पूर्णत: प्रतिबद्ध थे। इसके इलावा इन्होंने लक्ष्य की सतत् स्मृति के दर्पण में देखा-

1. साधुओं के लिए बनाए हुए स्थानकों का उपयोग दूसरे कामों के लिए भी होता है।
2. साधु पुस्तक, पात्र उपाश्रय आदि के क्रय-विक्रय में संलग्न रहते हैं।
3. साधु गृहस्थ को यह संकल्प कराते हैं कि दीक्षा लेनी हो तो मेरे पास ही लेना।
4. शिष्यों की खरीद-फरोख्त चलती है।
5. अयोग्य व्यक्ति को दीक्षा दी जाती है।
6. साधु की निश्रा में रहने वाली पुस्तकों का प्रतिलेखन नहीं किया जाता।
7. साधु मर्यादा से अधिक वस्त्र रखते हैं व आहार की मर्यादा के प्रति जागरूक नहीं रहते।

इन सभी स्थितियों से इनका मन आंदोलित हो उठा। इन्होंने यह बात अपने गुरु के सामने रखी। गुरु ने अपनी ओर से जो समाधान दिया, उससे इनको संतोष नहीं हुआ। इन्होंने कुछ समय तक प्रतीक्षा की। जब इन्हें पक्का विश्वास हो गया कि यहां रहते हुए इनके जीवन की दिशा में परिवर्तन नहीं हो सकेगा, तब इन्होंने धर्म क्रांति का झंडा उठाया।

वह पारंपरि
बगड़ी गांव से प्र
बीमारी होने से
प्रवेश किन-किन
कारण साधुत्व क
संविधान बनाया
उस संविधान में
ढंग से करी कि
से निरंतर पीढ़ी-
इतनी पुष्ट कर
धर्मक्रांति के पुरस
संघ मर्यादित हो,
अपेक्षा का अनुभ
मर्यादाओं को देख
की। बाद में समय
लिखित लिखे गए
संविधान यही है
पच्चीस दशकों में

आचार्य भिक्ष
उन्होंने 38000 श्
उनकी रचनाओं
के नवरत्नों का
धार्मिक क्रांति के
किया। उन्होंने ध्ये

सुरेश जैन

तथा अपने

है, तब ही
धर्म, जै
वश्व में इन
संस्थापक
के उपरांत
ही प्रचलित
के थे। वह
ततत् स्मृति

वह पारंपरिक रूढ़िवादियों, मिथ्या धारणाओं और अंधविश्वास के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए बगड़ी गांव से प्रस्थान कर गए और राजस्थान में मेवाड़ के केलबा जा पहुंचे। आचार्य भिक्षु ने धर्मसंघ में बीमारी होने से पहले ही उसे स्वस्थ रखने का उपाय खोजा। वह जानते थे कि धर्म संघों में बीमारियों का प्रवेश किन-किन परिस्थितियों में होता है। उन्होंने अनुभव किया कि शिष्यों तथा सुविधादायक क्षेत्रों के कारण साधुत्व का ध्यान कम रहता है। रोग के मूल को उन्मूलित करने के लिए उन्होंने धर्मसंघ के लिए एक संविधान बनाया। उन्होंने व्रत धारण किया और 28 जून 1760 को तेरापंथ धार्मिक संघ की स्थापना की। उस संविधान में तेरापंथ धर्मसंघ में साधना करने वाले साधु-साध्वियों के मस्तिष्क की धुलाई इतने अच्छे ढंग से करी कि किसी को स्वच्छन्द रहने और शिष्य बनाने का सपना भी नहीं आता था। करीब 250 वर्षों से निरंतर पीढ़ी-दर-पीढ़ी संक्रांत होने वाले संस्कारों ने धर्म संघ को सर्वोपरि और महान मानने की आस्था इतनी पुष्ट कर दी कि व्यक्तिवादी मनोवृत्ति सिर ही नहीं उठा सकती। तेरह साधु और तेरह श्रावक इस धर्मक्रांति के पुरस्कर्त्ता थे। तेरह संख्या के आधार पर ही उस धर्म क्रांति को नया नाम मिला 'तेरापंथ'। धर्म संघ मर्यादित हो, उसमें अनुशासन व व्यवस्था बनी रहे, इस दृष्टि से आचार्य भिक्षु ने एक संविधान की अपेक्षा का अनुभव किया। संविधान लिखकर एक-एक साधु के विचार आमंत्रित किए, साधुओं ने उन मर्यादाओं को देखा, उन पर विचार किया और उन्हें संघ पर लागू करने के विषय में अपनी सहमति प्रकट की। बाद में समसामयिक उपेक्षाओं को ध्यान में रखकर समय-समय पर व्यक्तिगत और सामूहिक अनेक लिखित लिखे गए। अंतिम लिखित वि. सं. 1859 माघ शुक्ला सप्तमी का है। तेरहपंथ धर्मसंघ का मौलिक संविधान यही है। आचार्य भिक्षु ने अपने अनुभव, चिंतन और सूझबूझ के द्वारा जो संविधान बनाया विगत पच्चीस दशकों में उसकी किसी भी धारा में परिवर्तन की उपेक्षा नहीं हुई।

आचार्य भिक्षु एक दार्शनिक संत, अनुभूति क्षम लेखक, संवेदनशील कवि और समाज सुधारक थे। उन्होंने 38000 श्लोकों की रचना की, उनकी रचनाएं 'भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर' नाम से दो भागों में संग्रहित हैं। उनकी रचनाओं में 'नव पदार्थ सद्भाव' को एक महत्वपूर्ण दार्शनिक ग्रंथ माना जाता है, जिसमें जैन दर्शन के नवरत्नों का समग्र प्रतिपादन है। यह एक शोषण मुक्त समाज का समर्थन करता है। आचार्य भिक्षु धार्मिक क्रांति के अग्रदूत थे और उन्होंने समाज को अनेक बुराइयों से मुक्त करने के लिए काफी परिश्रम किया। उन्होंने ध्येय की प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता होने की भरपूर हिमायत की। उन्होंने कहा कि दंड के भय या पुरस्कार के प्रलोभन से धर्म कार्य को निष्पादित नहीं किया जा सकता। इसके लिए हृदय परिवर्तन अनिवार्य है। उनका विश्वास था कि आवश्यकता वश की गई हिंसा भी हिंसा ही है और बड़ों के लाभ के लिए छोटों का दमन करना स्वीकार्य नहीं है। उन्होंने कहा जहां कहीं भी भलाई और सच्चाई है वह जाति, पंथ अथवा स्थान के भेद-भाव को ध्यान में न रखते हुए समाज कल्याण के लिए हितकर होगा। पीड़ित, शोषित और असहाय लोगों को दी गई सहायता को उन्होंने कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व और सामाजिक बाध्यता से जोड़कर समाज में क्रांति का आह्वान किया।

आचार्य भिक्षु ने विक्रम संवत् 1860 में राजस्थान के सिरियारी में निर्वाण प्राप्त किया। उनकी समाधि भी सिरियारी में बनी हुई है।

आचार्य भिक्षु पर डाक टिकट : इस महान क्रांतिकारी संत के चित्र वाली डाक टिकट भारत सरकार के डाक टिकट विभाग ने 30 जून 2004 को जारी की थी। इस बहुरंगी डाक टिकटों को चार लाख की संख्या में फोटोग्रव्योर मुद्रण प्रक्रिया से भारत प्रतिभूति मुद्रणालय, नासिक से छपवाया गया था, इस का मूल्य 500 पैसे है। इग्लैंड से छपने वाले स्टेनले गिब्न्स केटालाग में इसका विवरण नंबर 2056 पर अमेरिका से छपने वाले

पर्यटन स्थल

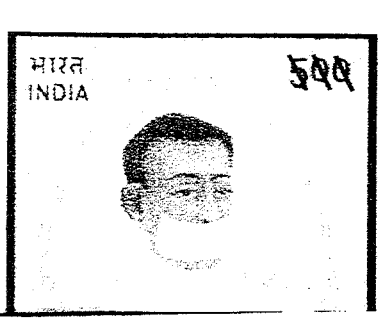

इंदौर मध
प्रदेश की व्याव
विश्वविद्यालय है
भी बड़ा रावला
वंश के होलकर
इंदौर पर पेशवा
को सूबा बनाकर
स्थित है। भौगोलि
की तुलना में का
रहा है।

इंदौर एक अ
में सबसे अधिक
से अधिक अंतर्रा
बनाने वाले व उ
व्यापार मंडी है।
हैं। यहां के आस-
और सोयाबीन क

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक : 24

बालचंद हीरा चंद दोशी (जैन)

भगवान् ऋषभदेव ने इंसान को आजीविका के लिए जो शिक्षा दी इन सब शिक्षाओं का सेठ बाल चंद हीरा चंद दोशी (जैन) ने अपने जीवन में भरपूर उपयोग किया था।

1) असि - डिफेन्स के लिए अति आधुनिक अस्त्र-शस्त्र बनाये।
2) मसि - शिक्षा के लिए स्कूल, कॉलेज व होस्टल बनवाये।
3) कृषि - खेती के लिए वैज्ञानिक ढंग से कार्य किया जिससे हज़ारों एकड़ भूमि लहलहा उठी।
4) शिल्प - देश में पहला हवाई जहाज, समुद्री जहाज व मोटर कार बनाई।
5) वाणिज्य - व्यापार को खूब बढ़ावा दिया, जिससे हज़ारों व्यक्तियों को आजीविका मिली।

ऐसे व्यक्ति बालचंद का जन्म गुजराती जैन परिवार में श्री हीराचंद की धर्मपत्नी श्रीमती राजूबाई की कुक्षि से 23 नवम्बर 1882 को शोलापुर में हुआ था। बालचंद को जन्म देने के एक पखवाड़े के उपरांत ही इनकी माता राजूबाई का देहांत हो गया। इनकी चाची उमा बाई ने इनको पाला पोसा व कभी माँ की कमी का अहसास नहीं होने दिया। कुछ समय बाद इनके पिता हीराचंद ने दूसरी शादी सुखो बाई से करली जिससे इनके तीन सौतेले भाई गुलाबचंद, रत्नचंद तथा लालचंद पैदा हुए।

पिता हीराचंद ने यह सुनिश्चित किया कि बालचंद की दिनचर्या अनुशासन, सत्यनिष्ठा तथा नित्यता से युक्त हो। उन्होंने भगवान् महावीर के संस्कृत में लिखे उपदेशों से बालक में संस्कार भरे। इन्होंने अपने पुत्र से कुछ चुनिदां खण्डों को कंठस्थ कराया, सामायिक तथा प्रतिक्रमण की विधि को कंठस्थ करवाया, धर्म की व्याख्या उन्होंने स्वयं तथा विद्वानों से करवाई।

❋
श्री सुरेश जैन
लुधियाना
❋

बालचंद ने ई.सं. 1899 में मैट्रिक पास की तथा सेंट ज़ेवियर कॉलेज से बी.ए. की डिगरी हासिल की। पढ़ाई के दौरान ही इनकी शादी ई. सन् 1900 में किला चन्द बाई से हो गई जिनसे इनकी एक बेटी चतुर का जन्म हुआ परन्तु पत्नी का प्रसव के समय ही देहांत हो गया। बाद में बालचंद ने परिवार के दबाव में आकर 1913 में दूसरी शादी कस्तूर बाई मेहता से कर ली, जिनसे इनके दो बच्चे एक बेटा व एक बेटी पैदा हुई परन्तु बाल्यकाल में ही इन दोनों बच्चों की मृत्यु हो गई।

कुछ वर्षों बाद बालचंद ने शोलापुर में अपने पिता तथा चाचा के विरोध के बावजूद कपास तथा बैंकिंग का पारिवारिक धंधा छोड़ दिया और रेलवे के एक भूतपूर्व क्लर्क लक्ष्मण बलवंत पाठक के साथ भागीदारी में पाठक बालचंद प्रा.लि. कम्पनी बनाकर रेलवे की ठेकेदारी का काम शुरू किया तथा बारसी लाइट रेलवे नामक - रेलवे लाइन के निर्माण का ठेका प्राप्त किया जो सफल रहा, इसके बाद इन्होंने रेलवे के कई ठेके हासिल किये। इनकी यह भागीदारी 1915 तक चली। इसके बाद बालचंद ने आगे बढ़ते हुए अनेक उद्योगों की स्थापना की। इन्होंने लोगों को जोड़ने के लिए पुलों का निर्माण शुरू किया, महाराष्ट्र में भोरघाट सुरंग को सफलता पूर्वक पूरा किया। इस कार्य को उस समय किसी भारतीय कम्पनी की क्षमताओं से परे का काम समझा जाता था। इन्होंने हिन्दुस्तान कंस्ट्रक्शन कम्पनी (एच.सी.एल) बनाई जिसने बड़ी-बड़ी निर्माण योजनाओं को अंजाम दिया।

बालचंद ने ई. सन् 1923 में देखा कि जब तक खेती को आधुनिकीकृत तथा लाभकारी नहीं बनाया जाता तब तक भारत के लाखों गरीबों की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता तथा इनका उपनिवेशवाद शोषण होता रहेगा। उन्होंने 1500 एकड़ भूमि खरीदी, उसमें से पत्थरों तथा चट्टानों को हटवाया। खेती के वैज्ञानिकों तथा इंजिनियरों को बुलाकर भूमि को खेती योग्य बनवाया, वैज्ञानिक ढंग से उसके ऊपर गन्ने की फसल की बिजाई करवाई। बंजर जमीन लहलहा उठी, इसी जमीन के एक भाग पर भारत की प्रथम चीनी मिल रावलगाँव शुगर फार्म लि. की स्थापना की। बेहतरीन चीनी प्रोसेसिंग प्रोद्यौगिकी के द्वारा ऐसी चीनी का उत्पादन किया जो अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप थी। इस बात से प्रभावित होकर महाराष्ट्र में किसानों ने हज़ारों एकड़ भूमि पर गन्ने की फसल उगाई, जगह-जगह चीनी बनाने की मिलें खुल गईं। चीनी मिलों की अभूतपूर्व सफलता का श्रेय श्री बालचंद को जाता है कि महाराष्ट्र राज्य इस समय भारत में सबसे अधिक चीनी बनाता है। बालचंद ने 1929 में जल परिवहन में भी अपनी पहचान बनाई तथा सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी के पास 54 स्टीमरों का बेड़ा था जो उस समय की सबसे बड़ी जल परिवहन कम्पनी थी, उसके चेयरमेन बन गये तथा 1950 तक इसी पद पर रहे, जब इन्होंने सेहत की खराबी के कारण त्यागपत्र दे दिया था।

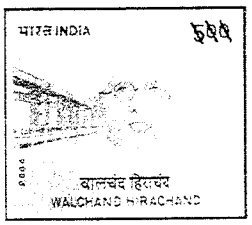

1939 में अपनी विदेश यात्रा के दौरान संयोग

ाशिवाद शोषण
भूमि खरीदी,
ःटवाया। खेती
बुलाकर भूमि
ढंग से उसके
क़रवाई। बंजर
के एक भाग
वलगाँव शुगर
चीनी प्रोसेसिंग
उत्पादन किया
थी। इस बात
नों ने हज़ारों
, जगह-जगह
नी मिलों की
वंद को जाता
रत में सबसे
ने 1929 में
बनाई तथा
के पास 54
य की सबसे
नके चेयरमेन
पर रहे, जब
त्यागपत्र दे

दौरान संयोग

से इनकी एक अमेरिकन हवाई जहाज कम्पनी के मैनेजर से भेंट हो गई, जिसके परिणाम स्वरूप इन्होंने भारत में हवाई जहाज बनाने का निश्चय किया। इन्होंने हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट लि. (एच.एफ.एल.) की स्थापना की। इनकी फेक्ट्री में निर्मित प्रथम प्रशिक्षण हवाई जहाज 'हार्लो' ने जुलाई 1941 में उड़ान भरी। इसके कुछ समय बाद 1943 में भारत की ब्रिटिश सरकार ने इसे सामरिक महत्त्व का तथा युद्धकौशल सम्बन्धी संवेदनशील बताकर एच.ए.एल. का राष्ट्रीयकरण कर लिया और इस कम्पनी का नाम HINDUSTAN AERONAUTICS LTD कर दिया तब से यह कम्पनी हवाई जहाज़ों का निर्माण कर रही है और ये जहाज वायु सीमा की सुरक्षा कर रहे हैं। 21 जून 1941 को बालचंद ने विशाखापट्टनम में सिंधियां शिपयार्ड लि. द्वारा बनाये जाने वाले समुद्री जहाज के कारखाने का नींव-पत्थर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से रखवाया था, इस बात की कल्पना भी कोई ब्रिटिशराज में नहीं कर सकता था। देश की आजादी के पश्चात् 1948 में इस कम्पनी द्वारा निर्मित पहले समुद्री जहाज 'जलुशाह' को भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के कर-कमलों से समुद्र में जलावतरण करवाया था। 1961 में इस कम्पनी का भारत सरकार ने देश की सुरक्षा के हित में राष्ट्रीयकरण कर लिया था और इसका नाम हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि. रख दिया गया।

1945 में बालचंद ने प्रीमियर आटोमोबाइल को भारत में मोटर कार बनाने के लिए स्थापित किया। इनकी स्वदेशी निर्मित मोटर कार 1949 में मार्किट में आ गई जो देश में निर्मित पहली मोटर कार थी। 1955 में इस कम्पनी ने फियट के साथ समझौता करके इंजनों का भारत में निर्माण शुरू किया।

बालचंद नगर इंडस्ट्रीज लि., इंडस्ट्रीयल मशीनरी डिव्हजन का निम्नलिखित क्षेत्रों में भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

स्वनिर्मित शुगर फैक्ट्री, शुगर मशीनरी का निर्यात, नौ सेना के जहाज़ों का गिअर बाक्स, स्वनिर्मित सीमेंट फैक्ट्री, अणु ऊर्जा प्रकल्प के महत्त्वपूर्ण हिस्से, आकाशयान, प्रक्षेपणास्त्र के पार्ट्स, पनडुब्बी के महत्त्वपूर्ण पार्ट्स, ऑप्टीकल टेलीस्कोप आदि।

बालचंद हीराचंद दोषी (जैन) की जीवन गाथा एक निर्भीक, दृढ़निश्चयी, निष्ठावान, बुद्धि तथा अंतर्ज्ञान से सम्पन्न असाधारण व्यक्ति के जीवन को प्रकट करती है। इस व्यक्ति में सृजनात्मकता की एक ऐसी ऊर्जा थी जो उनमें श्रेष्ठ विचारोंको संजोने एवं उन्हें उत्कृष्ट रूप से मूर्त रूप देने में सहायक थी, वे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, चलना सीखने से पहले दौड़ना जानते थे।

वे एक सच्चे देशभक्त और दूरदृष्टि रखने वाले जैन श्रावक थे।

व्यापार में उतार-चढ़ाव आने के बावजूद, बालचंद ने अपने कर्मचारियों और समुदाय के हित और कल्याण का मुख्य रूप से ध्यान रखा, इन्होंने बहुत से ट्रस्ट स्थापित किये जिन्होंने अनेक शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना की। 1941 में अपने पिता तथा चाचा के नाम पर सेठ हीराचंद-नेमचंद दिगम्बर जैन बोडिंग-पूना में जैन विद्यार्थियों के लिए बनवाया जहाँ पर केवल शुद्ध व सात्विक भोजन दिया जाता है।

शोलापुर में बालचंद इंस्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलोजी,

सांगली में बालचंद कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग,

बेलानदुर में बालचंद-डेलकारनी फिनिशिंग स्कूल,

शोलापुर में बालचंद कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साईंस,

सांगली में श्रीमती कस्तूर बाई-बाल चंद कॉलेज तथा सोनीपत में बालचंद पब्लिक स्कूल मुख्य रूप से हैं।

बालचंद चेम्बर ऑफ कामर्स-इंडस्ट्री एवं एग्रीकलचर के 1927 से 1938 तक 11 वर्ष प्रधान रहे। इण्डियन नेशनल शिप ऑनर्स एसोसिएशन के 1929 से 1948 तक 19 वर्ष तक प्रधान रहे, इण्डियन मर्चेन्ट चेम्बर के 1927-28 में प्रधान रहे। 1947 में जब देश आजाद हुआ उस समय बालचंद ग्रुप देश के प्रथम 10 बड़े औद्योगिक घरानों में एक था। 1949 में इनकी सेहत पर प्रहार हुआ तथा 1950 में इन्होंने व्यापार से अवकाश प्राप्त कर लिया। इनकी धर्मपत्नी कस्तूर बाई इनको प्राकृतिक परिवेश में बसे धार्मिक नगर सिद्धापुर (गुजरात) ले गई ताकि इनकी सेहत में सुधार हो सके। वहाँ कस्तूर बाई ने इनकी सेवा की तथा धर्म ध्यान करवाया, 3 साल बाद 8 अप्रेल 1953 को सिद्धापुर में श्री बाल चंद भारतीय उद्योग और इसके बुनियादी ढाँचे पर अपनी अमिट छाप छोड़कर परलोक सिधार गये। उनके जीवन का ध्येय भारत को आर्थिक बंधनों से मुक्त करना और यह सिद्ध करना था कि यदि अवसर दिए जाएँ तो भारत में वह क्षमता और योग्यता है कि वह कभी किसी से पीछे नहीं रहेगा। इन्होंने अपनी पूरी इच्छा शक्ति तथा निष्ठा के साथ अपने स्वप्नों को वास्तविकता में बदला।

भारत सरकार के संरक्षण मंत्रालय की तरफ से देश के प्रति सेवा के कारण कई बार इनको सम्मानित किया गया। इनकी याद तथा सम्मान में मुम्बई की एक रोड का नाम बालचंद हीराचंद मार्ग रखा गया है। शोलापुर में एक सड़क का नाम सेठ बालचंद हीराचंद मार्ग रखा गया है। इण्डियन मर्चेन्ट चेम्बर, मुम्बई में एक हाल का नाम बालचंद हीराचंद हाल रखा गया है। पूना के निकट एक औद्योगिक शहर को बालचंद नगर का नाम दिया गया है।

बालचंद हीराचंद दोशी (जैन) पर डाक टिकट

23-11-2004 को इनके 121 वें जन्म-दिवस पर भारत सरकार के डाक विभाग ने इनके सम्मान में एक बहुरंगी डाक टिकट जारी की थी, जिसका मूल्य 500 पैसे है, इसे 30 लाख संख्या में छापा गया था। इस डाक टिकट के मध्य में बालचंद का चित्र छापा गया है, पृष्ठ भूमि में एक तरफ पुल बना हुआ है व दूसरी ओर समुद्री जहाज बना है। टिकट के नीचे इंगलैण्ड व हिन्दी में बालचंद हिराचंद लिखा है। इस डाक टिकट का विवरण इंगलैण्ड से छपने वाले स्टेनले गिब्बस केटालाग में नम्बर एस.जी 2091 पर दिया गया है तथा अमेरिका से छपने वाले स्काट केटालाग में नम्बर 2087 पर दिया गया है।

♦♦

पश्चाताप अर्थात् पापमल को धोने वाली निर्मल अन्तर्भाव-धारा।

डाक टिकटों पर जैन इतिहास-क्रमांक 25

जवाहर लाल दर्डा (जैन)

-सुरेश जैन लुधियाना

महाराष्ट्रीयन जैन परिवार में श्री अमोल चंद और श्रीमती कुसुमबा के यहां जवाहर लाल दर्डा का जन्म ग्राम बभुलगांव, जिला यवतमाल महाराष्ट्र में 2 जुलाई, 1923 को हुआ था। 17 वर्ष की अल्पायु में ही वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े तथा 400 मील की लंबी पद्यात्रा की। 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया तथा इन्हें ब्रिटिश सरकार ने बंदी बना कर 1 वर्ष 9 महीने के कारावास की सजा दी। जेल के अंदर इन्होंने बाकी सत्याग्रहियों से मिलना जुलना आरंभ कर दिया।

इनकी शादी एक संपन्न परिवार में वीना देवी से हुई तथा दो बेटे विजय दर्डा तथा राजेन्द्र दर्डा हुए। सन् 1947 में जवाहर लाल दर्डा ने राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहित करने के लिए 'नवे जग' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र शुरू किया। सन्1952 में मराठी साप्ताहिक 'लोकमत' की शुरुआत की जिसे 1971 में दैनिक कर दिया गया। इस समय यह अखबार महाराष्ट्र के 13 शहरों से निकलता है व अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में भी प्रकाशित होता है। इस समय यह चौथा सबसे अधिक संख्या में छपने वाला समाचार पत्र है जिसकी सर्कुलेशन एक करोड़ आठ लाख छपन्न हज़ार है।

जवाहर लाल दर्डा, श्री विनोबा भावे से बड़े प्रभावित हुए थे। इन्होंने पूरे यवतमाल जिले में भूदान के लिए विनोबा भावे से मिलकर लोगों को प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप भूदान आंदोलन में यवतमल जिले में काफी भूमि दान की गई। इन्होंने महाराष्ट्र राज्य में सहकारी और कृषि से जुड़े आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया, इन्होंने अपने पिता के नाम पर अमोल चंद दर्डा महाविद्यालय की स्थापना की, जो विदर्भ क्षेत्र के अनेक कॉलेजों और अन्य शिक्षा संस्थानों का संचालन करता है। वे महाराष्ट्र राज्य गृहवित्त निगम के अध्यक्ष भी रहे।

सन् 1972 से 1995 तक जवाहर लाल दर्डा महाराष्ट्र विधान परिषद के लिए चुने जाते रहे हैं। इन्होंने राज्य मंत्री तथा केबिनेट मंत्री के रूप में कई विभागों का संचालन किया जिस में मुख्य रूप से ऊर्जा, उद्योग, सिंचाई, स्वास्थ्य, खाद्य व नागरिक आपूर्ति, खेल कूद, युवा मामले, कपड़ा और पर्यावरण है जहां इन्होंने महाराष्ट्र में कुशल प्रशासन के नए आयाम स्थापित किए।

जवाहर लाल दर्डा ने गरीबों और दलितों के उत्थान के लिए कई कदम उठाए। ऊर्जा क्षेत्र में विकास की गति प्रदान करने के लिए इन्होंने नागपुर के नज़दीक कोराडी ताप बिजली घर की स्थापना की। इनकी गहरी दिलचस्पी के परिणाम स्वरूप ही उन के समय में एक नई औद्योगिक नीति अस्तित्व में आई। इन्हीं के प्रयासों से महाराष्ट्र को भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान मिला और वे 'विकास पुरुष' के नाम से मशहूर हुए। इन्हें प्यार से लोग 'बाबूजी' तथा उनकी धर्मपत्नी वीना देवी को मातेश्वरी कहते थे।

25 नवम्बर 1997 को इन्होंने 74 वर्ष की आयु में मुम्बई में अंतिम सांस ली, इनके आदर्श आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बने रहेंगे।

जवाहर लाल दर्डा पर डाक टिकट तथा सम्मान : जवाहर लाल दर्डा (जैन) के सम्मान में एक बहूरंगी डाक टिकट भारत सरकार के डाक विभाग ने 2 दिसंबर 2005 को जारी की थी जिस का मूल्य 500 पैसे है। इस डाक टिकट को बिना जल चिन्ह वाले कागज़ पर 6 लाख संख्या में छापा गया था। इस का विवरण इंगलैंड से छपने वाले सटेनले गिब्बस केटालाग में **SG** नंबर 2155 पर दिया गया है तथा कामनवेल्थ देशों के केटालाग में नम्बर 1718 पर दिया गया है। इस डाक टिकट के ऊपर जवाहर लाल दर्डा का चित्र दिया गया है तथा नीचे हिन्दी तथा इंगलिश में इन का नाम लिखा है।

जवाहर लाल दर्डा के मरणोपरांत 12 सितम्बर 2013 को देश की आज़ादी में महत्वपूर्ण योगदान देने के लिए इंगलैंड के हाऊस आफ कामन्स में ब्रिटेन के मिनिस्टर फार बिजनेस अंगेजमेंट तथा इण्डों-ब्रिटिश आल पार्टी पार्लिमेंट्री ग्रुप ने इन को लाईफ टाईम अचीवमेंट अवार्ड दिया जो इन के बेटे विजय दर्डा ने प्राप्त किया।

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

Estd. 1957

Mahavir Elastic Industries (Regd.)

Manufacturers & Suppliers of

All kinds of Export Quality Elastic tape. Cord. Collar Braid & Elastic Thread Etc.

Off. 5153, Rui Mandi, Sadar Bazar, Delhi-6

Phone : 011-23612227.23620052 Fac. : 23657201
Fax : 91-11-27450089

SISTER CONCERN

Gautam Enterprises

5153, Rui Mandi, Sadar Bazar, Delhi-6

Rakesh Jain

पर्यटन स्थल

पुणे भारत
के पश्चिम भाग,
प्रशासकीय मुख्य
दूसरा सबसे बड़
महाराष्ट्र में मुंबइ
कारण इस शहर
प्रोद्यौगिकी और
लगता है। काफी
मराठी भाषा इस

पुणे शहर
रासायनिक प्रयो
संस्थान यहां है

पुणे महारा
जैसे उत्पादन क्षे
विप्रो, सिमैंटेक,
भारत का एक प्र

नाम : पुणे
'पुन्नक' या 'पुण
'पुनवडी' नाम
लाया जाने लगा
अधिकारिक ना

स्वतंत्रता
योगदान दिया।
को दर्शाता रहा
महात्मा फुले जै

पुणे शहर
मध्यम व छोटे

पुणे शहर
विस्तार करते च

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक : 26

महान् जैन व्यक्तित्व

डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी

❋

श्री सुरेश जैन
लुधियाना

❋

उच्च कोटि के विद्वान् जिन्हें 'सरस्वती पुत्र' भी कहा जाता है, डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी का जन्म, जोधपुर के एक सम्पन्न जैन घराने में प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी एवं वकील श्री दशरथ मल सिंघवी के घर 9 नवम्बर 1931 को हुआ था।

योग्यता - बचपन से ही लक्ष्मीमल की बड़ी तीक्ष्ण बुद्धि थी, मेधावी छात्र के रूप में छठी कक्षा से लेकर पीएच-डी करने तक लगातार ये छात्रवृत्ति प्राप्त करते रहे हैं तथा 18 वर्ष की छोटी सी आयु में इन्होंने 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्राप्त कर ली ! इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा बी.ए. में इन्हें 'स्वर्ण पदक' दिया गया! इसके बाद जयपुर विश्वविद्यालय से एल.-एल.बी. और एम.ए. की उपाधि प्राप्त कर एल.एल.एम के लिए हार्वर्ड विश्वविद्यालय में राजस्थान के प्रथम रोटरी स्कॉलर बने ! इन्होंने अमेरिका के कॉरनेल विश्वविद्यालय से रिकोर्ड दो वर्षों में पीएच-डी की और इन्हें बर्कले केलिफोर्निया के शिक्षण विभाग में नियुक्त किया गया, 1957 में अपने पिता के कहने पर अपने शानदार शिक्षण केरियर को छोड़कर भारत आ गये। डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी ने राजस्थान, दिल्ली, इलाहाबाद, कोलकाता, उसमानिया, आंध्र और जबलपुर विश्वविद्यालयों से अवैतनिक डॉक्टरेट की उपाधियाँ प्राप्त कीं। डॉ. सिंघवी संस्कृत भाषा में निपुण थे, वे संस्कृत में बात कर सकते थे, उन्हें भारत के प्राचीन साहित्य की गहरी जानकारी थी। वे हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में मंत्रमुग्ध करने वाले वक्ता थे। वे एक अत्यधिक सम्मानित बुद्धिजीवी, प्रकाशक, भाषाविद्, साहित्यकार तथा विचारवान व्यक्ति थे।

न्यायविद् - डॉ. सिंघवी भारत के उच्चतम न्यायालय के अग्रणी वरिष्ठ एडवोकेट थे तथा चार बार शीर्षस्थ न्यायालय बार एसोसिएशन के अध्यक्ष रहे ! इनकी लिखी गई न्याय की स्वतंत्रता पर रिपोर्ट तथा इसी विषय पर संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष रिपोर्ट के रूप में लिखी गई इनकी प्रारूप घोषणा (1987) की विश्व भर में सराहना की गई। इनके न्यायपालिका की स्वतंत्रता संबंधी दिशा-निर्देशों को दुनिया भर में सरकारी तौर पर 'सिंघवी सिद्धांतों' के रूप में जाना जाता है। 26 नवम्बर को

देश भर में मनाए जाने वाले 'कानून दिवस' की इन्होंने अवधारणा की तथा इसकी नींव रखी। इन्हें 1973 में विधि के क्षेत्र में सबसे पुराने और सर्वाधिक सम्मानित पीठों में से एक कोलकाता विश्वविद्यालय से ऑनरेरी टैगोर कानून प्रोफेसर के रूप में चुना गया, वे बंगलादेश, नेपाल और दक्षिण अफ्रीका के संविधानों के निर्माण से जुड़े रहे और अपना परामर्श दिया। वे एक प्रसिद्ध न्यायविद्, जाने माने संविधान विशेषज्ञ, मानवाधिकारों के एक प्रसिद्ध जानकार के रूप में जाने जाते हैं।

राजदूत - डॉ. सिंघवी का इंग्लैंड में भारत के उच्चायुक्त के रूप में सबसे लम्बा कार्यकाल (1991-1997) रहा, इस अवधि को भारत-इंग्लैंड संबंधों का स्वर्णकाल माना गया है। इन्होंने लंडन में नेहरू केन्द्र की स्थापना की जिसे अब भारतीय सांस्कृतिक राजनीति का केन्द्र माना जाता है। हुल एडिनबर्ग, वेल्स लंडन और लीस्टर समेत विभिन्न ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में डॉ. सिंघवी के नाम पर अनेक शैक्षिक पाठ्यक्रमों, पीठों एवं व्याख्यानों की स्थापना की गई। हुल विश्वविद्यालय में डॉ. एल.एम. सिंघवी भारतीय अध्ययन केन्द्र की स्थापना की गई।

राजनयिक - डॉ. सिंघवी को तीसरी लोकसभा (1962-1967) के लिए जोधपुर से निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुना गया और उन्हें उत्कृष्ट सांसद के रूप में जाना गया। इन्होंने विशेष योग्यता के साथ अनेक महत्त्वपूर्ण पद संभाले ! भारत सरकार की एक समिति पंचायती-राज संस्थानों का पुनरुज्जीवन के अध्यक्ष के रूप में इनकी सिफारिशों और प्रारूप संशोधनों को 73वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में शामिल कर लिया गया है। वे लोकपाल और लोकायुक्त जैसे शब्दों के निर्माता थे। डॉ. सिंघवी बी.जे.पी. के मेम्बर के तौर पर (1998-2004) के लिए राज्य सभा के मेम्बर भी चुने गये। वे एक मशहूर राजनयिक, विशिष्ट सांसद, राजनेता तथा बहुआयामी, व्यक्तित्व वाले एक शानदार व्यक्ति के रूप में जाने गये।

अंतर्राष्ट्रीय जिम्मेवारियाँ - डॉ. सिंघवी 1993 में वियाना में आयोजित संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के अध्यक्ष थे। फरवरी-मार्च 1998 में स्टॉकहोम में संस्कृति और विकास विषय पर आयोजित सम्मेलन में वे भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता थे। वे अंतरधर्म आन्दोलन के जाने-माने विद्वान् थे और 1993 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद के शताब्दी समारोह में चुने गये अध्यक्षों में से एक थे जिसमें इन्होंने प्रसिद्ध भाषण दिया। इन्होंने युनेस्को के कार्यपालक बोर्ड (2002-2005) के सदस्य के रूप में भी कार्य किया।

परिवार - डॉ. सिंघवी की शादी हिन्दी की विशेषज्ञ एवं लेखिका श्रीमती कमला से हुई थी। इनका एक पुत्र अभिषेक मनु सिंघवी चोटी का वकील तथा राजनीतिज्ञ है व बेटी अभिलाषा एक गुणी योग्यता प्राप्त वकील है तथा परोपकार एवं सेवा करने वाली संस्था मानव सेवा सनिधि की मैनेजिंग ट्रस्टी है।

कवि तथा लेखक - डॉ. सिंघवी एक कवि तथा लेखक भी थे इन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिखी जिनमें A TALE OF THREE CITIES, FREEDOM ON TRIAL, DEMOCRACY & RULE

OF LAW, THE EVENING SUN तथा भारत और हमारा समय बड़ी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

वे जैन इतिहास तथा संस्कृति के भी जाने-माने विद्वान् थे। इनकी ई. सन् 2002 में लिखी हुई पुस्तक JAIN TEMPLES IN INDIA AND AROUND THE WORLD (भारत तथा विश्व में जैन मन्दिर) की बड़ी प्रशंसा हुई है। डॉ. सिंघवी वर्ल्ड जैन कनफेडरेशन व वत्सल निधि के प्रधान तथा वीरायतन-राजगिरी के संरक्षक रहे हैं।

पुरस्कार तथा सम्मान - डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी को बहुत से राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मान तथा पुरस्कार मिले, जनवरी 1998 में भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया, 1994 में ईसाइयों और यहूदियों की अंतर्राष्ट्रीय परिषद् की ओर से अंतरधर्म स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। लंडन में डॉ. एल.एम. सिंघवी फाउंडेशन की स्थापना की गई, इंग्लैंड में रोटरी इंटरनेशनल के उत्कृष्टता पुरस्कार के प्रथम एम्बेस्डर का सम्मान और यू थांट शांति पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया, इन्हें 1993 में यूनिवर्सिटी ऑफ बर्घिगम द्वारा एल-एल.डी की मानद उपाधि दी गई, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी में SCHOOL OF CONSTITUTION LAW का नाम डॉ. एल.एम. सिंघवी के नाम पर रखा गया। 1992 में इनको कौम्ब्रिज विश्वविद्यालय में 500 से भी अधिक वर्ष पुराने अत्यधिक प्रतिष्ठित पद 'रीडे चेयर' के रूप में भी चुना गया।

अंतिम समय - देश के महान् सपूत श्री लक्ष्मीमल सिंघवी की 76 वर्ष की आयु में थोड़ी सी बीमारी के बाद 6 अक्तूबर 2007 को नई दिल्ली अस्पताल में हार्ट अटैक से मृत्यु हो गई। वे अपने पीछे अपनी धर्मपत्नी कमला सिंघवी तथा एक बेटा व एक बेटी छोड़ गये हैं।

डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी का व्यक्तित्व एवं डाक टिकट - डॉ. सिंघवी की मित्रता की सम्पदा ही उनकी धरोहर है। ऊर्जावान व्यक्तित्व, प्रकृति से शांत, आकृतों में परिपक्वता, व्यवहार में विनम्रता, निर्णय में तार्किकता, कार्य में तत्परता, पहनावे में सादापन, और व्यवहार में प्रभावशीलता-यह उनके व्यक्तित्व की पहचान है। वे प्राचीन भारतीय चिंतन, संस्कृति और सभ्यता के सनातन प्रतीक और चमकदार निशानी हैं। डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी के चित्र वाली एक बहुरंगी डाक डिकट इनकी मृत्यु के 17 महीने बाद ही 8 दिसम्बर 2008 को सिक्योरिटी प्रिंटिंग प्रेस हैदराबाद से बिना जल चिह्न वाले कागज़ पर 4 लाख संख्या में छपवा कर जारी की गई थी जिसका मूल्य 500 पैसे है। इसका डिजाइन भारती मीरचन्दानी ने ऐसा बनाया है कि टिकट पर तिरंगे झंडे का आभास होता है। सिर के ऊपर केसरी रंग की पृष्ठ भूमि है बीच में चेहरे का रंग सफेद तथा नीचे कोट का रंग हरा दिया गया है। सेन्टर में चेहरा ऐसे गोल डिज़ाइन में है कि चक्र प्रतीत हो। टिकट के नीचे हिन्दी तथा ईंग्लिश में डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी लिखा है। इस डाकटिकट का विवरण इंग्लैंड से छपने वाले स्टेनले गिब्ज्स केटालाग में एस.जी नम्बर 2421 पर, अमेरिका से छपने वाले सकाट केटालाग में नम्बर 2128 पर तथा कामनवेल्थ देशों के केटालाग में नम्बर 1848 पर दिया गया है।

♦♦

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-27

जैनाचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज

-सुरेश जैन, लुधियाना

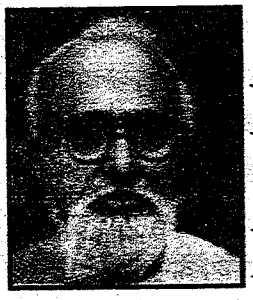

गायकवाड़ राज्य की बड़ौदा नगरी में घड़ियाली पोल के एक प्रतिष्ठित परिवार में कार्तिक सुदी दूज (भैय्या दूज) के दिन नवम्बर 1870 को पिता श्री दीपचंद भाई और माता श्रीमती इच्छा बाई के घर बालक छगन का जन्म हुआ। जब पिता का अवसान हुआ, तब माता का सन्तानों के प्रति आधार रहा। आखिर माता का भी बीमारीवश बिछुड़ने का समय आ गया। उस समय बालक छगन लाल की उम्र 16 वर्ष की थी। इन्होंने माता को पूछा कि मुझे किस के सहारे छोड़कर जा रही हो, तो माता के मुख से निकला-तुझे अरिहन्त शरण में छोड़ कर जा रही हूं और माता के इस आशीर्वाद ने बालक छगन को आने वाली जिन्दगी का रास्ता दिखा दिया। ईस्वी सन् 1887 में गुजरात के राधानपुर में छगन ने 17 वर्ष की अल्प आयु में सांसारिक जीवन से विरक्त होकर जैन आचार्य श्री विजयानंद सूरि जी महाराज, प्रसिद्ध नाम श्री आत्माराम जी महाराज के चरणों में संन्यास अंगीकार कर लिया। उन्होंने अपने प्रशिष्य मुनिराज श्री हर्ष विजय जी महाराज के शिष्य के रूप में उद्घोषणा की और नाम दिया-विजय वल्लभ। विजय का अर्थ है जीत तथा वल्लभ का अर्थ है प्यार तथा प्यारा।

जीवन में जिसने प्यार से सबका दिल जीता, वह विजय वल्लभ कहलाया तथा जो जीवन भर सबका प्यारा बनकर रहा वह था विजय वल्लभ। इनके गुरु का तीन वर्षों में देहांत हो गया तथा विजय वल्लभ लगभग नौ वर्षों तक श्री विजयानंद सूरि जी के सान्निध्य में रहे। उन्होंने अपने विचारों के अनुसार विजय वल्लभ को गढ़ना प्रारंभ किया, भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित जैन दर्शन, अहिंसा अनेकान्त तथा अपरिग्रह का ज्ञान मुनि वल्लभ को प्रदान किया। मुनि वल्लभ ने समकालीन धर्मों के अध्ययन में भी निपुणता प्राप्त की। आचार्य विजयानंद ने इन्हें न केवल पूजा के स्थानों की स्थापना करने अपितु शिक्षण संस्थानों तथा सेवा केन्द्रों की भी स्थापना करने के लिए कहा जिससे महिलाओं और पुरुषों दोनों को सही परिप्रेक्ष्य में धर्म को समझने में मदद मिल सके। मुनि वल्लभ ने अपने गुरु को शिरोधार्य करते हुए जाति, श्रेणी और वर्ग का भेदभाव किए बिना समाज के कल्याण के लिए कार्य किया। उन्होंने अज्ञानता, अंधविश्वास और अशिक्षा का निर्मूलन करने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए। अपने मानवीय चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और व्यावहारिक जीवन के कारण वह लोगों के प्रिय गुरु बन गए।

वह समाज को जीवंत, प्रगतिशील व उन्नतिशील देखना चाहते थे, उनका सामाजिक दृष्टिकोण सुधारवादी था। वह परिवर्तनशील समाज के साथ चलना धर्म मानते थे। इस दूरदर्शी संत ने समाज की मुख्य आवश्यकताओं को महसूस करते हुए लोगों के जीवन के स्तर को सुधारने के लिए नैतिक और सद्शिक्षा पर बल दिया। उन्होंने देश के विभिन्न हिस्सों में विद्यालय, कालेज, गुरुकुल, पुस्तकालय और कला तथा प्रशिक्षण केन्द्र खोलने के लिए समाज को प्रेरित किया। सन् 1915 में मुम्बई में श्री महावीर जैन विद्यालय का खोला जाना

और इसकी परवर्ती शाखाओं की स्थापना, गुजरांवाला में भी आत्मानंद जैन गुरुकुल और अम्बाला में श्री आत्मानंद जैन कालेज की स्थापना कुछ शानदार उदाहरण हैं।

इसके अलावा उन्होंने साध्वी प्रवचन का समर्थन किया, दहेज आदि कुप्रथाएं मिटाने का प्रयत्न किया, ध्वनिवर्धक यंत्र का उपयोग प्रारंभ किया। इन बातों का उनके समकालीन आचार्यों ने घोर विरोध किया, कुछ मुनियों, आचार्यों व श्रावकों ने तो उनके प्रत्येक विचार का विरोध किया। उनका विचार था कि आधुनिक शिक्षा से संस्कृति का ह्रास होता है। आज इतने समय के बाद सबको ऐसा लगता है कि विजय वल्लभ पूर्णत: ठीक थे। उस समय यदि सबने साथ दिया होता तो आज धर्म, समाज व संस्कृति का इतिहास कुछ और होता। आज के युग में कुछ क्रांतिकारी संत और साध्वियां यह नारा बुलंद कर रहे हैं 'जहां जिनालय वहां विद्यालय', क्या अच्छा हो आज समाज शिक्षा (स्कूल कालेज आदि), स्वास्थ्य (अस्पताल, स्वास्थ्य केन्द्र आदि), सेवा (वृद्ध आश्रम-बालगृह आदि) के महत्व को समझें।

वल्लभ विजयश्री को सन् 1924 में लाहौर (अब पाकिस्तान) में आचार्य की पदवी दी गई। आप कलिकाल-कल्पतरू, अज्ञान तिमिर तरणि, भारत-दिवाकर, पंजाब केसरी आदि अनेक अलंकरणों से सम्मानित हुए।

आचार्यश्री शोध कार्य के विद्वान थे। उन्होंने अमूल्य पांडुलिपियों की हजारों प्रतिलिपियों को एकत्र और सुरक्षित किया। उन्होंने श्री महावीर जैन विद्यालय, मुम्बई और जैन गुरुकुल, गुजरांवाला तथा अन्य पुस्तकालयों में भारतीय विधाओं (इंडोलॉजी) पर पुस्तकें प्रकाशित कीं जो ज्ञान और सांस्कृतिक धरोहर के बहुमूल्य भंडार हैं। उन्होंने उपलब्ध ज्ञान को आधुनिक शोध की परिधि में ढालने की सलाह दी।

आचार्य विजय वल्लभ अखंड बाल ब्रह्मचारी थे। तप, संयम और चरित्र की साक्षात प्रतिमा थे, उनमें अद्भुत आत्मबल, आत्म विश्वास और आत्म तेज था। वे मानवता और आध्यात्मिकता के एक उत्कृष्ट उदाहरण थे। वह कट्टर देशभक्त थे, स्वतंत्रता संग्राम से एकजुटता रखते हुए उन्होंने जीवन पर्यन्त खादी धारण की तथा अपने प्रवचनों से स्वदेशी का प्रचार किया। उन्होंने प्रवचनों और व्यवहार दोनों के द्वारा जीवन के उच्चतम नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने जैन साधुओं की मर्यादा का पालन करते हुए नंगे पांव गहन पदयात्राएं कीं और जैन धर्म के संदेश को प्रसारित करने के लिए महाराष्ट्र, गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब तथा जम्मू और कश्मीर राज्यों का कई बार दौरा किया। उनका जन्म गुजरात में हुआ था फिर भी उन्होंने राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी को बढ़ावा दिया। वह एक प्रसिद्ध वक्ता, लेखक और कवि थे। उन्होंने गद्य में अनेक पुस्तकें लिखने के अलावा लगभग 1600 कविताएं, गीत और भजन लिखे जो कथ्य और शैली दोनों में ही समृद्ध है। वे धर्म निरपेक्षता के पोषक थे और साम्प्रदायिक सद्भाव और धर्म-समभाव के उद्घोषक थे। उन्होंने यह घोषणा की, 'मैं न जैन हूं, न बौद्ध हूं, न वैष्णव हूं, न शैव हूं, न हिन्दू हूं और न मुसलमान। मैं तो वीतराग देव परमात्मा को खोजने के मार्ग पर चलने वाला मानव हूं, यात्री हूं।'

विजय वल्लभ का सामाजिक दृष्टिकोण सुधारवादी था, न तो उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों को नकारा, न उसे पूर्ण रूप से स्वीकारा, जिन रूढ़ियों को वह उचित, न्यायसंगत व धर्म के अनुरूप समझते थे उन्हें स्वीकारा, जिन रूढ़ियों से न तो कोई धर्म को लाभ होता है न समाज को, जो केवल रूढ़ि बनकर रह गई थी, जिनके पालन व प्रचलन से किसी भी प्रकार का लाभ नहीं होता, उन्हें अस्वीकार करते थे।

आचार्य
प्रथम :
दूसरा :
तीसरा :
आचार्यश्री
स्वावलंबन को
आचार्य वि
बजकर 32 मिन
शिष्य भी विद्या,
पौत्र शिष्य तप
अखंड 47वां वर्ष
जैनाचार्य
द्वारा जारी किए
के ऊपर श्री विज
बना हुआ है तथ
जैनाचार्य वल्लभ
वेट-ऑफ़सेट मु
था। इसका मूल्य
सटेनले गिब्बण्स
केटालाग में नंबर

Suitable
Qualification
Suitable
fication +2; Oc

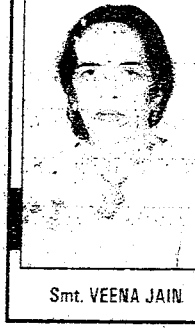

Smt. VEENA JAIN

में श्री

किया,
, कुछ
धुनिक
पूर्णत:
होता।
लय',
, सेवा

काल-

त्र और
ालयों
भंडार

. उनमें
उत्कृष्ट
खादी
जीवन
ओं की

आचार्य विजय वल्लभ के जीवन के तीन आदर्श थे।

प्रथम : आत्म संन्यास, आत्म साधना, इस लक्ष्य के बिना आत्मोन्नति संभव नहीं।

दूसरा : ज्ञान प्रचार, शिक्षा प्रचार, शिक्षा के अभाव में जीवन शून्य है।

तीसरा : मध्यम वर्ग का उत्कर्ष, अनेक परिवारों को सुखी बनाना, उन्हें अपने पांव पर खड़ा करना।

आचार्यश्री ने वास्तव में समाज के चहुंमुखी विकास के लिए शिक्षा, सेवा, संगठन, साहित्य और स्वावलंबन को अपनी पहचान और जीवन का लक्ष्य बना लिया था।

आचार्य विजय वल्लभ का जीवन दीप 84 वर्ष की आयु में 22 सितम्बर, 1954, मंगलवार को रात 2 बजकर 32 मिनट पर पुष्य नक्षत्र में भायखला-मुम्बई में बुझ गया। विजय वल्लभजी के अन्य शिष्य और पौत्र शिष्य भी विद्या, तप और सेवा के क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य कर रहे हैं, तप परम्परा में श्रीमद् विजय वल्लभ सूरि के पौत्र शिष्य तप चक्रवर्ती श्री विजय वसंत सूरि जी महाराज शिष्य स्व. श्री विचार विजय जी महाराज का अखंड 47वां वर्षी तप चल रहा है। ज्ञात सूत्रों के अनुसार भारतवर्ष में होने वाला यह सबसे लम्बा वर्षीतप है।

जैनाचार्य विजय वल्लभ पर डाक टिकट : 21 फरवरी 2009 को भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा जारी किए गए डाक टिकट को शंख सामंत द्वारा डिजाइन किया गया था, टिकट के ऊपर श्री विजय वल्लभ जी का बैठी हुई मुद्रा में पूरा चित्र हाथ में पुस्तक लेकर बना हुआ है तथा पृष्ठ भूमि में वल्लभ स्मारक दिल्ली का चित्र है, टिकट के नीचे जैनाचार्य वल्लभ सूरि हिन्दी तथा इंगलिश में लिखा है। इस बहुरंगी डाक टिकट को वेट-ऑफ़सेट मुद्रण प्रक्रिया से 10 लाख की संख्या में छपवा कर जारी किया गया था। इसका मूल्य 500 पैसे है। इस डाक टिकट का विवरण इंगलैंड से छपने वाले सटेनले गिब्बण्स केटालाग में एसजी नंबर 2454 पर तथा कामनवेल्थ देशों के केटालाग में नंबर 1871 पर दिया गया है।

वधू चाहिए

थम दिवस आवरण FIRST DAY COVER

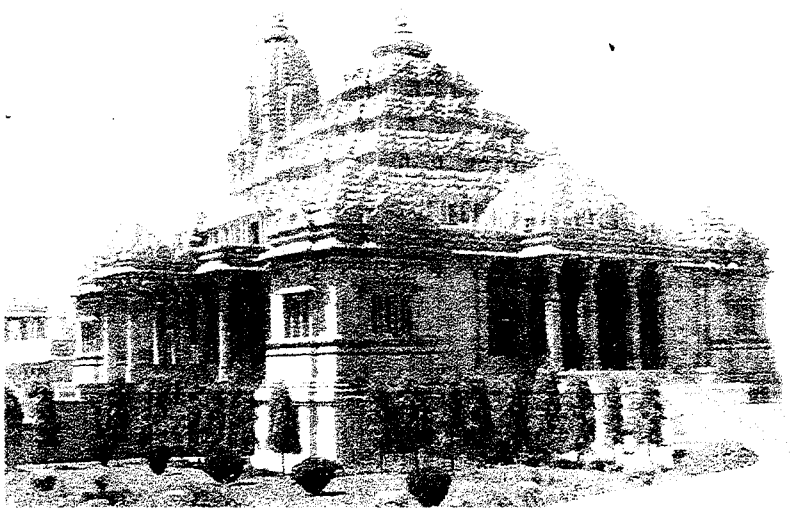

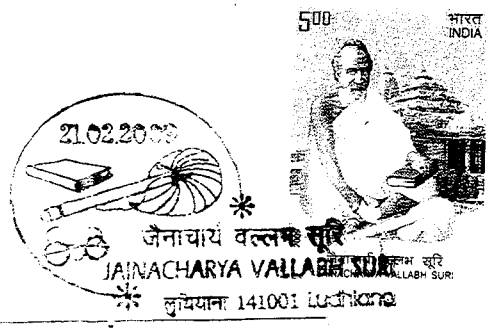

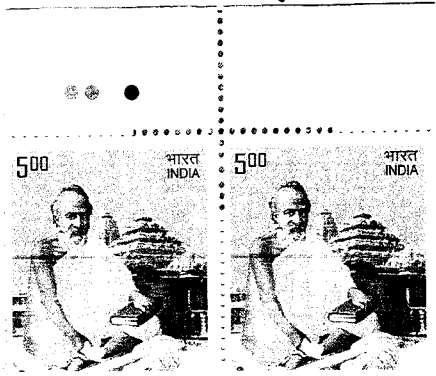

डाक टिकटों का इतिहास क्रमांक-28

उद्योगकर्मी हरखचंद नाहटा (जैन)

-सुरेश जैन, लुधियाना

बीकानेर (राजस्थान) के एक प्रख्यात जैन परिवार में 18 जुलाई 1936 को हरखचंद नाहटा का जन्म हुआ था। इनके पिता श्री भैरूदान नाहटा एक सरल स्वभावी समाजसेवी व कुशल व्यापारी थे, इनकी माता श्रीमती दुर्गा देवी बेहद धार्मिक विचारों वाली तपस्वी महिली थीं। इनके चाचा स्वर्गीय अग्रचंद नाहटा तथा बड़ा भाई भंवर लाल नाहटा (साहित्य वाचस्पति) जैन साहित्य व प्राकृत भाषा के विशेषज्ञ तथा उच्च कोटि के विद्वान हैं। इनके परिवार के पास अपनी निजी विशिष्ट तथा अनमोल 85000 पुस्तकें, पांडुलिपियां, साहित्य व कला की अनुपम धरोहर है, जो इनकी पारिवारिक संस्था अभय जैन ग्रंथ घर, बीकानेर (राजस्थान) में सुरक्षित रखी हुई है।

श्री हरखचंद नाहटा अपनी स्कूली शिक्षा बीकानेर में पूर्ण करने के बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कलकत्ता के कालेज में दाखिल हो गए तथा शिक्षाकाल में ही उन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन प्रारंभ किया। वह एक दूरदर्शी युवा उद्योगकर्मी थे जो लीक से हटकर कुछ नया करने के सपने संजोए हुए थे। त्रिपुरा में सबसे बड़ी रेलवे आऊट एजेंसी (त्रिपुरा टाऊन एजेंसी) को संभालते हुए यह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने त्रिपुरा के दुर्गम क्षेत्रों में सड़क परिवहन को प्रारंभ किया तथा अपने व्यय एवं जोखिम पर परिवहन के लिए सड़कों का निर्माण करवाया, जिससे दुर्गम क्षेत्र के आर्थिक विकास तथा दोतरफा व्यवसाय की अभिवृद्धि हुई, आदिवासी व जनजाति खुशहाल हुए व तीव्र गति से उनका उत्थान होना शुरू हुआ। इनका परिवार पिछले 175 सालों से व्यापार के क्षेत्र में है तथा इनका व्यापारिक क्षेत्र असम, मेघालय, पश्चिम बंगाल, कोलकात्ता, त्रिपुरा तथा पुराना पूर्वी बंगाल (अब बंगलादेश) तक फैल रहा है।

श्री हरखचंद नाहटा ने कलकत्ता में बंद की कगार पर खड़े 'काली स्टूडियो' का अधिग्रहण कर उनके तकनीशियनों को उसमें हिस्सेदार बनाया और उसका नाम रखा 'टैक्नीशियन स्टूडियो प्रा.लि.'। इस स्टूडियो को 30 साल तक बिना मुनाफे के चलाकर बंगाल के फिल्म उद्योग में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की, वहीं तकनीशियकों व कलाकारों को अपनी गुणवत्ता पूर्ण प्रस्तुति के अवसर प्रदान किए। उन्होंने फिल्म तथा नाट्य क्षेत्र की अनेक उभरती प्रतिभाओं को अपनी परिपक्व सलाह, सहायता तथा संरक्षण प्रदान किया। वह कला तथा साहित्य प्रेमी थे। उन्होंने अनेक कवियों, साहित्यकारों तथा कलाकारों को सहायता देकर प्रोत्साहित किया। उन्होंने अपने फिल्म स्टूडियो के माध्यम से फिल्म निर्माण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सत्यजीत रे, ऋत्विक घटक, बासु भट्टाचार्य जैसे विश्वविख्यात फिल्म निर्देशक उनके स्टूडियो से जुड़े हुए थे। कुछ समय बाद इन्होंने फिल्म फाइनेंस तथा भूमि व्यवसाय में पदार्पण किया, जिन क्षेत्रों में उनकी ख्याति साफ-सुथरे व्यवसायी के रूप में थी।

श्री हरखचंद नाहटा देश के अग्रणी सामाजिक नेता व दानवीर थे। मानवीय अस्मिता, समानता तथा

सम्मान की रक्षा के लिए वे सतत् संघर्षशील रहे, 60 से अधिक विभिन्न सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं से विभिन्न रूपों से जुड़े हुए थे। यथा हार्टकेयर फाऊंडेशन आफ इंडिया, प्राकृत भारती अकादमी, ऋषभदेव फाऊंडेशन, वीरायतन राजगिरि, शांति मंदिर बिठारी, राजस्थान भारती, अहिंसा इंटरनैशनल, जैन महासभा, भारत जैन महामंडल, विश्व जैन परिषद, मिमझर इत्यादि बहुत सी अन्य, इन संस्थाओं के उच्च आदर्शों तथा लभ्यों की पूर्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे। अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासंघ के 1990 से जीवन भर 1999 तक अध्यक्ष रहे, जो भारतवर्ष में हजारों जैनियों की प्रतिनिधि संस्था है। वह मेधावी विश्लेषणात्मक मस्तिष्क वाले सहृदय पाठक थे। उन्होंने विविध विषयों पर विद्वत्तापूर्ण तथा प्रेरणादायी आलेख लिखे। वह एक कुशल तथा प्रभावशाली वक्ता थे, जिनका अपने विषयों पर आधिपत्य था तथा उनकी वक्तृत्व शैली श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध रखती थी। अन्तर्निहित प्रतिभा पहचानने में वह पारखी थे व अनेक साहित्यकारों की रचनाओं का अपने व्यय पर प्रकाशन कर उन्हें प्रोत्साहित किया, जिसमें एक मासिक पत्रिका भी है।

श्री हरखचंद नाहटा जन्म से तो जैन थे परन्तु 'सर्वधर्म समभाव' की जीवन्त मूर्ति थे, जात-पात अथवा धर्म की सीमाओं से परे वह प्रत्येक धर्म का सम्मान करते थे तथा बिना किसी भेदभाव के विभिन्न धर्मों के धार्मिक स्थलों के लिए सहृदयता से सहायता करते थे। वे इस सिद्धान्त के कट्टर प्रतिपादी थे कि धर्म व्यक्तियों को आपस में जोड़ने वाला होना चाहिए न कि तोड़ने वाला। देश की अखंडता व सुरक्षा को वह धर्म व संस्कृति से भी अधिक महत्व देते हुए कहा करते थे कि देश सुरक्षित रहेगा तो ही हमारा धर्म व संस्कृति सुरक्षित रहेगी। उनका मानना था कि सहृदयता, सहनशीलता, समानता, सम्मान तथा आपसी प्रेम सभी धार्मिक प्रसंगों में परस्पर व्यवहार का आधार धर्मों का होना चाहिए व इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह विभिन्न स्तरों पर सतत् प्रयत्नशील रहे।

एक पूर्ण व संतुष्ट जीवन व्यतीत करके 63 वर्ष की आयु में 21 फरवरी 1999 को नई दिल्ली में थोड़े समय की रुग्णावस्था के पश्चात इनका देहावसान हो गया।

पुरस्कार तथा सम्मान : उद्योग तथा व्यवसाय के क्षेत्र में उनकी बहुआयामी सेवाओं की स्वीकृति के रूप में भारत के उपराष्ट्रपति तथा दिल्ली के राज्यपाल ने इन्हें सम्मानित किया। इनके सम्मान में एक सड़क का नाम 'हरखचंद नाहटा मार्ग' रखा गया है, यह सड़क दक्षिण-पश्चिम दिल्ली के 3 गांव नानकखेड़ी, बादूसराय तथा रवांपुर को आपस में जोड़ती है। इस मार्ग का उद्घाटन 1 मार्च 2007 को प्रसिद्ध पहलवान, अभिनेता, राज्यसभा के सदस्य श्री दारा सिंह ने किया था।

31 मार्च 2007 को महावीर जयंती के अवसर पर श्री हरखचंद नाहटा की मूर्ति का अनावरण सांसद व अभिनेत्री श्रीमती हेमा मालिनी ने महाबलिपुरम तीर्थ, गांव भट्टी, नई दिल्ली में किया था। इनके जन्म स्थान बीकानेर (राजस्थान) में एक मुख्य मार्ग 100 फीट चौड़ा व 2 किलोमीटर लम्बा का नाम हरखचंद नाहटा मार्ग रख बीकानेर के महापौर ने 28 सितम्बर 2013 को उसका लोकार्पण किया था।

हरखचंद नाहटा पर डाक टिकट व डाक टिकट का डिजाइन : विभिन्न विषयों (थीम्स) के पाथ श्री हरखचंद नाहटा के चित्र वाली डाक टिकट का विमोचन 28 फरवरी 2009 को मुम्बई में राजभवन के दरबार हाल में महाराष्ट्र के राज्यपाल महामहिम श्री एस.सी. जमीर ने प्रतिष्ठित सामाजिक नेता, उद्योगपति,

व्यापारी, कलाकारों, बुद्धिजीवी, जैन समाज के महत्वपूर्ण सदस्यों तथा श्री हरखचंद नाहटा के परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में किया था। इस बहुरंगी डाक टिकट का मूल्य 500 पैसे है। इसे 5 लाख संख्या में भारत सरकार के डाक विभाग ने जारी किया था। अलका शर्मा द्वारा डिजाइन की गई इस डाक टिकट में श्री हरखचंद नाहटा का प्रणाम की मुद्रा में मुस्कुराते हुए चित्र के साथ बारालाचा पास त्रिपुरा के हिमाच्छादित पहाड़, इंद्रधनुष, फिल्मरील, त्रिपुरा की आदिवासी मां बेटे को गोद में लिए, त्रिपुरा सुंदरी मंदिर का कलात्मक द्वार, त्रिपुरा सुंदरी का भव्य मंदिर, सोलहवीं शताब्दी की मुद्रा (सिक्का), त्रिपुरा का पक्षी, त्रिपुरा का शाही ध्वज, मालवाहक ट्रक आदि दर्शाए गए हैं। इस प्रकार एक ही डाक टिकट के ऊपर प्राकृतिक दृश्यों, आदिवासी, कलात्मक इमारतों, इंद्र धनुष, मंदिर, सिक्का, पक्षी, ध्वज, फिल्में, यातायात, सड़क परिवहन, व्यापारी, उद्योगकर्मी, जैन व्यक्तित्व विशेष श्री हरखचंद नाहटा आदि 12 विषयों (थीम्स) को देखा जा सकता है। इस डाक टिकट का विवरण इंगलैंड में छपने वाले स्टेनले गिब्बस केटालाग में एसजी नंबर 2455 पर तथा कॉमनवेल्थ देशों के केटालाग में नंबर 1872 पर दिया गया है।

आभार : श्री हरखचंद नाहटा जी के सुपुत्र श्री ललित कुमार नाहटा, जो कि मेरे मित्र हैं तथा जैनइज्म फिलैटली ग्रुप के सीनियर सदस्य हैं, ने मुझे इस लेख के लिए कुछ तथ्यों से अवगत करवाया है। मैं इस सहयोग के लिए उनका धन्यवाद करता हूं। -**सुरेश जैन**

डाक टिकटों का इतिहास क्रमांक-29

विश्वविख्यात दिलवाड़ा एवं रणकपुर जैन मंदिर

-सुरेश जैन, लुधियाना

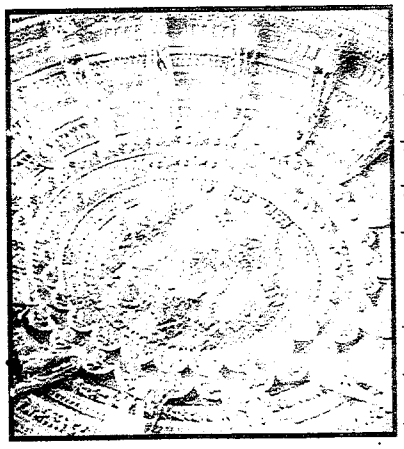

मांउट आबू पर स्थित दिलवाड़ा जैन मंदिर 11वीं व 13वीं सदी में बनाए गए, पांच संगमरमर से बने मंदिरों का समूह है। संगमरमर का काम इतने उत्कृष्ट ढंग से किया गया है कि पहली बार मंदिर को देखने के बाद अपनी आंखों पर विश्वास नहीं होता कि यह किसी इंसान के हाथों की कारीगरी है अथवा किसी देव माया द्वारा रची गई रचना है। इन मंदिरों में हुए काम की खूबसूरती तो आंखों तथा दिल-दिमाग को तृप्त कर देती है, मंदिरों का अद्‌भुत कलात्मक सौंदर्य हमें किसी दूसरी दुनिया में ले जाता है। शिल्प सौंदर्य का एक उत्कृष्ट नमूना हमें इन मंदिरों में देखने को मिलता है। सारे विश्व में इतनी सुन्दर शिल्पकला और कहीं नहीं, विपुल प्रवेश द्वार, बारीक नक्काशीदार छत दरवाजे, स्तंभ व ढ़िल्ले दर्शकों को मंत्र मुग्ध कर देते हैं। प्रथम मंदिर विमलविसाही का निर्माण विक्रमी संवत् 1088 में गुजरात के चालुक्य राजा भीमदेव के मंत्री विमलशाह ने करवाया था। यह मंदिर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को समर्पित है। इस मंदिर की खूबसूरत नक्काशियों में छतों, मंडपों, स्तम्भों और महराबो पर उकेरी गई कमल की पंखुड़िया, फूल और जैन व हिन्दु पुराणों के दृश्य हैं। विमलविसाही मन्दिर का सबसे आकर्षक भाग रंगमंडप है, यह एक भव्य खुला मंडप है, जिसमें 48 कलायुक्त स्तंभ है। प्रत्येक दो स्तंभ आपस में अलकृत तोरणों द्वारा जुड़े हैं। मंडप के बीचोंबीच एक लटकता हुआ आकर्षक झुमका है। इस के बाद गोलाकार मालाओं में पशु-पक्षी, देवी-देवता इत्यादि बने हैं। इन मालाओं के आधारित 16 स्तंभो पर 16 विद्या देवियों की मूर्तियां हैं, जिनके हाथों में विभिन्न अस्त्र आयुद्य सुशोभित हैं। रंगमंडप की आसपास की छतों पर सरस्वती लक्ष्मीदेवी, भरत-बाहूबली के युद्ध का दृश्य, अयोध्या व तक्षशिला नगरी, राज दरबार का दृश्य आदि अलंकृत हैं। संगमरमर का पत्थर अंबाजी के निकट स्थित आरासण पहाड़ियों में से हाथियों द्वारा लाया जाता था।

इसकी स्मृति मे इस मंदिर में हस्तीशाला भी बनाई गई है जिसमें संगमरमर के 10 हाथी बने हुए हैं। आज से करीब 1000वर्ष पूर्व इस मंदिर को बनवाने की लागत 18 करोड़ 53 लाख रु. आई थी, 14 वर्षों का परिश्रम एवं 1500 कारीगरों व 1200 मजदूरो की अथक सहायता से इस भव्य मंदिर का निर्माण हुआ था।

लुणावसही मंदिर : इस मंदिर को श्री वस्तुपाल तेजपाल द्वारा विक्रमी संवत् 1287 में बनवाया गया था। इस की लागत करीब 800 वर्ष पूर्व 12 करोड़ 53 लाख रु. आई थी। इस मंदिर की तथा विमल विसाई मंदिर में काफी समानता है। लुणावसही मंदिर में मूलनायक नेमिनाथ भगवान है। इस मंदिर में 48 देरियां हैं जिनमें तीर्थंकरों की प्रतिमाएं स्थापित की गई है। इन देरियों के सामने जो बरामदा है, उसे परिक्रमा कहा जाता

र

ा जैन, लुधियाना

काम की खूबसूरती
मंदिरों का अद्भुत
नूना हमें इन मंदिरों
प्रवेश द्वार, बारीक
विमलविसाही का
करवाया था। यह
स्काशियों में छतों,
पुराणों के दृश्य हैं।
उप है, जिसमें 48
बीच एक लटकता
त्यादि बने हैं। इन
भिन्न अस्त्र आयुद्य
के युद्ध का दृश्य,
अंबाजी के निकट

ा बने हुए हैं। आज
थी, 14 वर्षों का
निर्माण हुआ था।
7 में बनवाया गया
था विमल विंसाई
दर में 48 देरियां हैं
रिक्रमा कहा जाता

है। परिक्रमा की छतों पर आकर्षक शिल्पकला की गई है। जैन तीर्थंकरों के चरित्र के कुछ जीवन प्रसंग, उनका पंचकल्याणक महोत्सव, फूल-पत्तियां, पशु-पक्षी, नाटक-संगीत आदि के सुन्दर शिल्प यहां पर हैं। यहां तोरणों, स्तंभों, देवरानी-जेठानी के गौरव के आले और परिक्रमा में छतों की नक्काशी दर्शनीय है, छतों पर नेमिनाथ-राजुल कथा, नागदमन और देवी-देवताओं के शिल्प देखने योग्य हैं। इस मंदिर का संगमरमर भी हाथियों द्वारा लाया जाता था, यहां भी एक हस्तीशाला बनाई गई है, जिसमें संगमरमर के 10 हाथी बने हुए हैं।

लुणावसही मंदिर के दायीं तरफ एक छोटे बगीचे में दादा साहिब की पगलियां बनी हैं और बायीं ओर मेवाड़ के राणा कुंभा द्वारा निर्मित काले पत्थर का कीर्तिस्तंभ बना है जो अधूरा सा प्रतीत होता है। अन्य तीन मंदिर छोटे लेकिन समानरूप से रमणीय हैं। 'पीत्तलहर मंदिर' को यह नाम उसमें पांच धातुओं, प्रमुखत: पीतल से बनी श्री आदिनाथ भगवान की विशाल द्यातु मूर्ति से मिला है।

खरतरवसही मंदिर : इस मंदिर के मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं। यह मंदिर दिलवाड़ा के मंदिरों में सबसे ऊंचा है। इस मंदिर को बिना कोई श्रम लिए श्रमिको ने अपने फुर्सत के समय का सदुपयोग करके स्वेच्छा तथा श्रद्धा से बनाया था। इस मंदिर के प्रत्येक धूसरबलुआ पत्थर से बनी 'दिकपालो', 'विद्यादेवियों', 'यक्षिणियों' और 'शालमंजिकाओं' की मूर्तियों से सुसज्जित मंडप हैं। इस मंदिर को शिल्पियों का मंदिर भी कहा जाता है।

महावीर स्वामी मंदिर का निर्माण 1582 में हुआ था और इसकी प्रमुख विशेषता सिरोही के कलाकारों द्वारा 1764 में इसके मंडप की दीवारों के ऊपरी हिस्से में बनाए गए चित्र हैं।

मंदिर में प्रवेश का समय : भगवान की पूजा करने वाले जैन श्रावकों के लिए सुबह 12 बजे तक का समय रखा गया है। पर्यटकों के लिए श्रद्धा के यह द्वार दोपहर 12 बजे से सायं 6 बजे तक खुले रहते हैं।

रणकपुर जैन मंदिर : अरावली घाटी की पहाड़ियों में स्थित रणकपुर का जैन मंदिर स्थापत्य कला की दृष्टि में विश्व में अद्वितीय है। इस मंदिर के शिखरों, गुंबजों और छतों में भी कलाविज्ञ और भक्तिशील शिल्पियों की छेनियों ने कई पुरातन कथा प्रसंगों की सजीव कर नए शिल्प अंकित किए हैं। यहां का प्रमुख चौमुखा मंदिर प्राचीन, अति विशाल एवं भव्य मंदिर है। कला और शिल्प के अनुपम भंडार की यह कृति प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ भगवान को समर्पित है, यह मंदिर मेवाड़ के महाराणा कुम्भा के राज्यकाल में उनके अपूर्व सहयोग से धरणा शाह नामक पोरवाल जैन श्वेतांबर महाजन ने सन् 1439 में बनवाया था। एक मान्यता के अनुसार 2500 शिल्पियों ने 65वर्षों के अथक प्रयत्नों के पश्चात् इस मंदिर का निर्माण किया था और इस पर उस समय 99 लाख रु.लागत आई थी। इस के मुख्य शिल्पकार का नाम श्री दीपा जी कलाकार था। इस मंदिर के चार द्वार और तीन मंजिले हैं। प्रत्येक मंजिल पर चौमुखी प्रतिमा विराजमान है। मंदिर की सबसे अद्वितीय विशेषता इसकी विपुल स्तंभवली है। कुल 1444 स्तंभ बताए जाते हैं, पर उनकी गणना करना कठिन है। इसकी रचना इस ढंग से की गई है कि प्रत्येक स्तंभ के पास खड़े हों अथवा मंदिर के किसी भाग या कोने में खड़े हो, भक्त प्रभु के दर्शन पा सकता है, मूर्ति आपकी आंखों के सामने होगी, इतने स्तंभ होने पर भी कोई स्तम्भ प्रभु दर्शन में बाधक नहीं बनता। इन स्तम्भों की विचित्रता यह है कि कोई भी दो स्तंभ एक समान नहीं है। इनमें कुछ युगल जोड़ों की भी अनुपम कला कृतियां सुशोभित हैं। स्तम्भों की ऊंचाई लगभग

40 फीट है, जिन पर बारीक नक्काशी का काम किया हुआ है। मुख्य प्रवेश द्वार में आने के पश्चात रंग मंडप के स्तंभों में एक स्थान में कुछ ऊंचाई पर भी धारणा शाह की मूर्ति तराशी हुई है, उस स्थान से श्री आदीश्वर भगवान के सदा दर्शन होते रहते हैं। अन्य एक स्तम्भ में शिल्पकार दीपाजी के हाथ में कमंडलु और गज के साथ मूर्ति है। यहां पर हर मूर्ति किसी अन्य मूर्ति के सामने है। एक सुन्दर कृति संगमरमर के एक ही पत्थर से बनी हुई है, जिसमें सांपों के 108 फन उकेरे गए हैं, परन्तु इनकी पूंछ ढूंढ पाना असंभव है। इस मंदिर के नीचे एक बहुत बड़ा तहखाना है, उसमें अनेक प्राचीन मूर्तियों का संग्रह है। इस मंदिर में चौमुख मंदिर के इलावा पार्श्वनाथ मंदिर, अंबा माता मंदिर और सूर्य मंदिर स्थित हैं। 80 गुम्बदों और स्तंभदार 24 सभा भवनों से युक्त इस मंदिर की मूर्तिकला की विपुलता और मोहकता देखते ही बनती है। हर घंटे में स्तम्भों का रंग सुनहरे से हलके नीले में बदलता है। इस मंदिर में 250-250 किलो वजन के (कुल 500 किलो वजन के) दो नर-मादा घंटे हैं जिन्हें बजाने पर इनमें से ॐ जैसी ध्वनि निकलती है और शांत वातावरण में 3 कि.मी. तक सुनाई देती है। इसके अतिरिक्त नागदमन (कृष्णलीला) सहस्त्र कूट के कलापूर्ण शीलपट्ट, कल्पवृक्ष का पत्ता और स्तंभों के बीच वाले तोरणों की कारीगरी देखकर अपूर्व आनंद प्राप्त होता है। मनुष्य जब प्राकृतिक दृश्यों के साथ स्वर्गलोक के देव-विमान तुल्य इस कलात्मक मंदिर के दर्शन करता है, तब अपने आप को भूल कर यह अनुभव करने लगता है कि वह सचमुच दिव्यलोक में पहुंच गया है।

थोड़ी दूरी पर इस मंदिर के ठीक सामने कारीगरों द्वारा अपने खाली समय का सदुपयोग करके मंदिर के बेकार तथा बचे-खुचे संगमरमर पत्थरों पर अपनी छेनियों से ऐसा कार्य किया है कि एक मंदिर निर्माण हो गया है, जिसे कारीगरों का मंदिर कहते हैं।

डाक टिकट का डिज़ाईन एवं डाक टिकट : हमारी विरासत के जैन मंदिरों पर छपी पहली बहुरंगी डाकटिकट पर, दूरी से लिया गया दिलवाड़ा जैन मंदिरों का चित्र आधी टिकट पर छपा है, शेष आधी टिकट पर दिलवाड़ा मंदिर के रंग मंडप की छत दिखाई गई है।

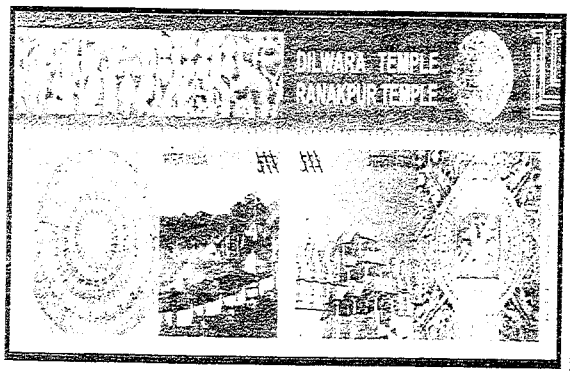

हमारी बहूरंगी डाक टिकट पर रणकपुर मंदिर का बाहरी भाग आधी टिकट पर छपा है तथा बाकी आधी टिकट पर एक खूबसूरत स्तंभ की नक्काशी दिखाई गई है। दोनों डाक टिकटो को 14-10-2009 को जारी किया गया था, प्रत्येक का मूल्य 500 पैसे है। प्रत्येक डाक टिकट को 4 लाख संख्या में तथा प्रत्येक **MINIATUR SHEET** को 4 लाख संख्या में वेट-ऑफसेट मुद्रण प्रक्रिया से प्रतिभूति मुद्रणालय, हैदराबाद से छपवा कर भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा जारी किया गया था। इसका विवरण इंगलैंड से छपने वाले स्टेनले गिब्बंस केटालाग में **S.G No. 2513, 2514, 2514 A, 2515** पर दिया गया है।

वधू चाहिए

Suitable match for Jain Manglik Divorcee boy D.O.B. 26.8.1984, time 5.25 A.M. at Delhi, height 5'-9", B.Com., Own Business. Contact No. : 096506-06660, 099155-07762.

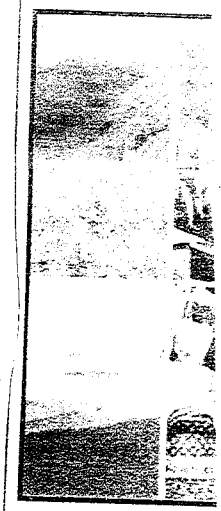

एक राष्ट्रीय भाषा व
मणिपुरी को एक सं

• **परिचय** : मणि
थी। आजादी के बाद
पहाड़ी है। जलवायु
लगभग 60 जनजाति
कई बोलियां बोली
एक सड़क बर्मा को

इस राज्य में प्र
तरोताजा करने वाले
जंगल हैं, हमेशा बहने
झरने हैं। लोकटक झी
सकता है, पहाड़ियां व
गौरव है। राज्य की क

मणिपुर के लोग
नागा और कूकी-चिन
रिवाज हैं जो इनके नृत
साथ ही सृजनशील हो
विश्वभर में अपनी डिज़

डाक टिकटों का इतिहास क्रमांक-30

एक विराट व्यक्तित्व वीरचंद राघव जी गांधी

-सुरेश जैन, लुधियाना

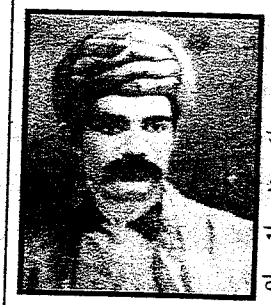

अरब सागर के तट से सटे छोटे से शहर महुआ (भावनगर) गुजरात में 25 अगस्त 1864 को एक प्रतिष्ठित जैन परिवार में पिता श्री राघव जी तेजपाल गांधी तथा माता श्रीमति मणिबाई के घर एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ, जिसका नाम वीरचंद राघव जी गांधी रखा गया, यह अपने माता पिता की इकलौती संतान थी।

इस प्रतिभाशाली बालक ने प्राथमिक शिक्षा महुआ के स्थानीय विद्यालय से प्राप्त की, इनके पिता को स्कूल के हैडमास्टर ने सलाह दी कि होनहार बालक वीरचंद को भावनगर के बड़े स्कूल में पढ़ाई करवाएं, इसके बाद परिवार वीरचंद की पढ़ाई के लिए भावनगर शिफ्ट हो गया। इन्होंने भावनगर में अल्फ्रड हाई स्कूल से 1880 में मेरिट के साथ मैट्रिक पास किया। पूरे जिले में फर्स्ट आने पर इनको 'सर जसवंत सिंह जी स्कॉलरशिप मिला। इनकी उच्च शिक्षा के लिए परिवार मुंबई शिफ्ट हो गया तथा एलफिस्टन कालेज से सन् 1884 में ऑनर्स के साथ बी.ए. पास किया। यह पूरे जैन समाज के शायद पहले ग्रेजुएट थे। वीरचंद जी एक अच्छे भाषाविद् भी थे, उन्हें 14 भाषाओं का ज्ञान था। 1884 में ही सामाजिक जीवन की शुरुआत की तथा मात्र 21 वर्ष की आयु में ही जैन एसोसिएशन ऑफ बम्बई' के सैक्रेट्री नियुक्त हुए।

1885-86 में सरकारी सॉलिस्टर मैं, लिटल स्मिथ फायर एंड निकलसन में बतौर आर्टीकल क्लर्क काम किया। शत्रुंजय तीर्थ-विवाद में मुंबई के गवर्नर से 'आर्डर ऑफ इंकवायरी' प्राप्त कर, मुंबई, पूना व अहमदाबाद से कागज़ात व रिकार्ड तैयार किया था, शत्रुंजय तीर्थ पर लगने वाले प्रति यात्री टैक्स के खिलाफ कर्नल वाट्सन और बम्बई के गवर्नर लार्डरेय की लिखित याचिका व दलीले दीं। इन्होंने सम्मेत शिखर की पवित्र पहाड़ियों पर मौजूद बूचड़खाने को बंद करवाने के लिए कलकत्ता हाईकोर्ट में अपील दायर की, स्वयं छह मास वहां रहकर बंगाली सीखी, पुरानी फाइलों व रिकार्ड का अनुवाद किया, जैन समाज के हक में फैसला हाईकोर्ट ने दिया।

श्रीमद् विजयानंद सूरि (मुनि आत्माराम जी) के कहने पर मुंबई के जैन संघ ने वीरचंद गांधी को विश्व धर्म परिषद् में भेजना मंजूर किया। वे कुछ महीने पहले श्री आत्माराम जी के पास पंजाब में बैरोवाल, अमृतसर और होशियारपुर में साथ रहे जैन धर्म, इतिहास, दर्शन व चिंतन को जाना। महाराज श्री जी ने विदेशों में अपने नित्य-नियमों का पालन करने व गुजराती अथवा भारतीय पहनावा पहनने का नियम भी दिया।

वीरचंद जी का धार्मिक ज्ञान केवल जैन धर्म तक सीमित नहीं था, वे बौद्ध धर्म, वेदांत दर्शन, ईसाईयत, इस्लाम व पाश्चात्य दर्शन के भी विद्यार्थी रहे, इसलिए वे विभिन्न दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन करने और इन विषयों पर विद्वतापूर्वक बोलने में निपुण थे।

अध्याय में पृष्ठ 87 पर किया है।

वीरचंद गांधी एक विद्वान लेखक, ओजस्वी वक्ता व एक उत्कृष्ट साधक थे। इनकी लिखी हुई पुस्तकें इस प्रकार है: 1. जैनदर्शन (अंग्रेजी), 2. कर्म-दर्शन (अंग्रेजी), 3. योग-दर्शन (अंग्रजी), 4. अननोन लाईफ ऑफ जीसस क्राईस्ट फ्रेंच भाषा से अंग्रेजी भाषा में अनुवादित, 5. भारतीय दर्शन (अंग्रेजी), 6. रंधावकृत वाणी-हानिकारक चल (गुजराती), 7. सवीर्यध्याना (गुजराती), 8. वीरचंद गांधी के चयनित व्याख्यान (अंग्रेजी)।

1896 में दूसरी बार अमेरिका से निमंत्रण आने पर दोबारा अमेरिका गए तथा अपनी धर्म पत्नी सुश्री जीवी बेन को भी साथ ले गए। वहां इन्हें समाचार मिला कि भारत में भीषण अकाल पड़ा है तो अमेरिका से अनाज का एक जहाज तथा 40000/- रूपए की सहायता भिजवाई। ज़ार निकोलस द्वितीय के प्रयासों से जब हेग (नींदरलैड) में वर्ष 1899 में **INTERNATIONAL CONFERENCE OF COMMERCE** आयोजित की गई तो वीरचंद गांधी उसमें भारत के एक मात्र प्रतिनिधि थे। उस सम्मेलन में उन्होंने भारत और अमेरिका के बीच व्यापार संबंधों पर व्याख्यान दिया था।

इसके बाद बैरिस्टरी का कोर्स पूरा करने का सोच कर वे लंदन चले गए। उनका शरीर लंदन की सर्दी के अनुकूल नहीं था। डाक्टरों ने तो बैरिस्ट्री की फाईनल परीक्षा से कई माह पहले ही उन्हें भारत लौट जाने की सलाह दी थी, पर वे इस कोर्स को पूरा करके ही भारत लौटे। तब तक बहुत देर हो चुकी थी। सात अगस्त 1901 के दिन शरीर ने उनका साथ छोड़ दिया और केवल 37 वर्षों की अल्पायु में ही इस होनहार युवा व्यक्ति का निधन हो गया। देश मानवता और जैन समुदाय की सेवा करना और भगवान महावीर के सर्व प्रेम व अहिंसा के संदेश का दुनिया भर में प्रचार करना, उनके जीवन की महत्वाकांक्षा थी। उनका संक्षिप्त जीवन धर्म और मानवता के प्रति समर्पित था। वर्ष 1990 में उनकी याद में महुआ (भारत) तथा शिकागो (अमेरिका) में उनकी मूर्ति स्थापित की गई।

वीरचंद राघवजी गांधी के चित्र वाला डाक टिकट तथा डाक टिकट का डिज़ाईन : शंख सांमत द्वारा डिज़ाईन किए हुए डाक टिकट पर नज़र डालते ही एक पीले रंग के गोल चक्र में वीरचंद राघवजी गांधी के चित्र पर नज़र पड़ती है, जिस में वे अपने सिर पर सुनहरी रंग की पगड़ी धारण किए हुए हैं तथा जामुनी रंग का कुर्त्ता पहना हुआ है। पृष्ट भूमि में विश्वधर्म संसद का अधिवेषण चल रहा है, जिसमें अन्य भाग लेने वाले वक्ताओं के मध्य में वीरचंद राघव जी गांधी सिर पर पगड़ी धारण किए ऊपर से नीचे तक भारतीय वेष भूषा में दिखाई दे रहे हैं। टिकट के नीचे हिन्दी तथा इंगलिश में वीरचंद राघव जी गांधी लिखा है। डाक टिकट का मूल्य 500 पैसे है, बिना जल चिन्ह वाले कागज़ पर इस बहूरंगी डाक टिकट को 4 लाख संख्या में प्रतिभूति मुद्राणालय हैदराबाद से छपवा कर भारत सरकार के डाक विभाग ने 8-11-2009 को जारी किया था। इस डाक टिकट का विवरण इंग्लैंड से छपने वाले स्टेनले गिब्बस केटालाग में **S.G No. 2525** पर दिया गया है।

1893 में विश्व धर्म संसद-शिकागो में शामिल होने के लिए समुद्री जहाज 'एस. एस. आसाम' में अमेरिका के लिए प्रस्थान किया तथा केवल शुद्ध सात्विक भोजन खाने के लिए भारतीय बावर्ची को साथ ले गए। पहनावे में आमतौर पर जामुनी लिबास का कुर्ता, सुनहरी पगड़ी व कमरबंद धारण करते थे। विश्व धर्म संसद का अधिवेशन 11 सितम्बर से 27 सितम्बर 1893 तक शिकागो में चला। इसमें वे जैन धर्म के प्रतिनिधि के तौर पर शामिल हुए। इस धर्म संसद में जैन धर्म के अलावा अन्य सब धर्मों की आलोचना की गई विशेष तौर पर हिन्दु धर्म की, जब वीरचंद जी के बोलने का समय आया तो उन्होंने कहा 'मैं प्रसन्न हूं कि किसी ने मेरे धर्म पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया' ऐसा करना भी नहीं चाहिए, जो आक्रमण किए गए हैं वे सामाजिक कुरीतियों से संबंध रखते हैं। यह कुरीतियां किसी धर्म के कारण नहीं है ऐसी बातें सब देशों में हुआ करती हैं। अपनी महत्वकांक्षाओं को लक्ष्य में रख कर कुछ लोग यह समझते हैं कि वह महात्मा पाल हैं और इस पर वे विश्वास भी कर लेते हैं यह पाल भारत को छोड़ कर अपने विचारों का प्रदर्शन करने और कहां जाएं? वे ईसाई धर्म न मानने वालों को अपने धर्म की परिधि में लाने के लिए भारत में जाते हैं, जब उन का स्वप्न भंग हो जाता है तब वे जीवन भर हिन्दुओं की निंदा करने के लिए वापिस आ जाते हैं। किसी भी धर्म की निन्दा करना उस धर्म के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं। इसी प्रकार अपने धर्म की प्रशंसा अपने धर्म की सत्यता का प्रमाण नहीं है। इस संसद में इन्होंने केवल जैन धर्म ही नहीं अपितु अन्य भारतीय धर्मों पर भी अति प्रभावी भाषणों, बहस, व्याख्याओं तथा अपना यथार्थ पक्ष पेश कर हिन्दु धर्म, बौद्ध धर्म तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति की परिभाषा पेश की, विभिन्न प्रकार के भारतीय दार्शनिक चिंतनों पर व्याख्यान दिया। इन्होंने कई भ्रांतियों को दूर करते हुए भारतीय संस्कृति का समर्थन किया। शालीन व्यवहार, व्यापक ज्ञान और अंग्रेजी भाषा पर अधिकार होने से वीरचंद गांधी वर्ल्ड रिलीजियस पार्लियामेंट में बहुत प्रभावशाली बने रहे।

विश्व धर्म संसद के अधिवेशन के बाद वीरचंद गांधी अमेरिका में ही ठहर गए तथा **CHICAGO, BOSTON, NEW YORK, WASHINGTON** तथा योरप में **ENGLAND, FRANCE, GERMANY** व अन्य योरपीय देशों में लगभग दो सालों के प्रवास में इन्होंने जैन धर्म, अन्य धर्मों और भारत के सांस्कृतिक व सामाजिक जीवन पर लगभग 535 भाषण (व्याख्यान) दिए। इन्होंने भारत की आजादी के पांच दशक पहले ही इसकी आर्थिक व राजनीतिक आजादी की बात की। इनके भाषण की मूल भावना संस्कृति और दृष्टिकोण को दर्शाते थे। साहित्यिक व आध्यात्मिक संस्थानों, चर्चों और सामाजिक संगठनों ने इनका बड़ी गर्म जोशी से स्वागत किया व सम्मान किया। इन्होंने अनेक संस्थानों और समितियों की स्थापना की, शिकागो में स्थापित 'दी सोसायटी फॉर दी एजुकेशन ऑफ वुमेन इन इंडिया' ने विशेष रूप से अनेक महिलाओं को अमेरिका में अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। इस के इलावा गांधी फिलास्फिकल सोसायटी तथा स्कूल ऑफ ओरियंटल फिलॉस्फी संस्थाएं स्थापित की। इनके भोजन के बारे में स्वयं स्वामी विवेकानंद जी ने एक पत्र जो उन्होंने जूनागढ़ स्टेट के दीवान को लिखा कि वीरचंद गांधी तो यहां की कड़ाके की सर्दी में भी शाक व सब्जी ही खाता है, कुछ दूसरा आहार ग्रहण नहीं करता। वे अमेरिका व यूरोप में एक धार्मिक जैन की भांति जीवन व्यतीत करने वाले निर्दोष वनस्पति आहारी थे, वे 1895 में भारत वापस आ गए। वीरचंद गांधी ने एक मित्र के रूप में भारतीय कानून को जानने व समझने में महात्मा गांधी की सहायता की थी, इस बात का जिक्र स्वयं महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा **MY EXPERIMENTS WITH TRUTH-PART-II** के तीसरे

डाक टिकटों का इतिहास क्रमांक-31

अध्यात्म योगिनी, महासती श्री उमराव कंवर जी 'अर्चना'

-सुरेश जैन, लुधियाना

श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज की साध्वी उमराव कंवर जी 'अर्चना' का जन्म 15 अगस्त 1922 ईस्वी को राजस्थान के दादिया गांव जिला किशनगढ़ में पिता श्री जगन्नाथ सिंह तातेड़ (जैन) तथा माता श्रीमती अनुपमा देवी के यहां हुआ था (पिताश्री जगन्नाथ सिंह तातेड़ ने बाद में दीक्षा ग्रहण कर मुनि मांगी लाल जी के रूप में जैन धर्म का प्रचार किया था) बेटी का नाम अलोल कंवर रखा गया। उस समय भारत में बाल विवाह की प्रथा चल रही थी, मात्र साढ़े ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में इनका विवाह अजमेर के दौराई गांव में श्री चम्पालाल हिंगड के साथ हुआ। विवाह के दो वर्ष बाद ही इनके पति का देहान्त हो गया तथा वे निराश्रित हो गई।

सौभाग्यवश अलोल कंवर मेड़ता (राजस्थान) के गांव नोखा चंदावतन में महासाध्वी श्री सरदार कंवर जी महाराज के संपर्क में आई तथा ईस्वी संवत् 1937 में पूज्य प्रवर्त्तक स्वामी श्री हजारी मल जी महाराज से दीक्षा पाठ ग्रहण कर जैन धर्म में साध्वी बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। दीक्षा के बाद इनका नाम उमराव कंवर रखा गया।

संयम पथ पर चलने के बाद इनकी गुरुणी मैय्या श्री सरदार कंवर जी ने तथा प्रवर्त्तक श्री हजारी मल जी ने इनको धर्म की दौलत से मालामाल कर दिया। इन्होंने जैन धार्मिक ग्रंथों तथा समकालीन धर्मों के ग्रंथों का बड़ी गहराई से अध्ययन किया। आप ने जैन दर्शन व अन्य भारतीय संस्कृति और विभिन्न 7 भाषाओं (संस्कृत, उर्दू, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, पंजाबी व अंग्रेजी) का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् जैन धर्म का प्रचार करने तथा लोगों में आध्यात्मिक चेतना जागृत करने के लिए कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, तामिलनाडु, गुजरात व सौराष्ट्र आदि क्षेत्रों का भ्रमण कर जैन समाज का परचम फैलाया तथा अनेक लोगों को अहिंसक बनाया। इन्होंने साथ ही सभी धर्मों के साधकों से संपर्क साधने की कृति व ध्यान योग के माध्यम से जनता का पथ प्रदर्शन किया। महासती उमराव कंवर जी जैन समुदाय की प्रथम साध्वी थी जिन्होंने पैदल यात्रा के दौरान कश्मीर की दुर्गम घाटियों को पार कर अहिंसा का संदेश देकर लोगों को शाकाहारी बनाया। उन्हें जैन संस्थानों व अन्य संस्थानों द्वारा समय-समय पर कश्मीर प्रचारिका, अध्यात्मयोगिनी, महा योगेश्वरी, मालव ज्योति, प्रवचन शिरोमणि आदि रूप में मान दिया गया।

अपने पंजाब भ्रमण के दौरान साध्वी उमराव कंवर जी ने एक चातुर्मास लुधियाना की पवित्र धरती पर आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के चरणों में किया। यहां पर इन्होंने प्रतिदिन कई-कई घंटे आचार्यश्री जी के चरणों में बैठकर भगवान महावीर की वाणी तथा जैन शास्त्रों का बड़ा बारीकी के साथ गहन अध्ययन किया और आचार्यश्री जी से शास्त्रों के कठिन से कठिन बिन्दुओं पर लंबी वार्ता की। इसके

बाद इन के जीवन में भक्ति तथा शक्ति का और रंग भर गया। वाणी में बड़ा निखार आ गया, शास्त्रों की शैली में प्रवचन करने, बात करने तथा लिखने का ढंग ही बदल गया।

महासती उमराव कंवर जी ने अपने साधना काल में प्रवचन, लेखन, संस्मरण और योग आदि प्राचीन ग्रंथों से संबंधित 30 से अधिक पुस्तकें लिखी, उनमें आम्र मंजरी, अर्चना के फूल, अर्चना के प्रदीप, हिम और आतप, अर्चना और आलोक जैसी व्यापक रूप से प्रशंक्षित पुस्तकें हैं। जैन योग ग्रंथ चतुष्टय पंचामृत, योग मार्ग, जीवन संध्या आदि का संपादन भी किया।

महासती जी की सद्प्रेरणा से विभिन्न शिक्षण संस्थाएं, आगम प्रकाशन, श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, बुक बैंक, श्री उमराव उम्मेद उपकरण समिति, अर्चना कुंज अतिथि गृह, गौशालाएं, अस्पताल, लेबोट्री, स्थानक भवन, सहधर्मी सहयोग समितियां तथा करोड़ों की लागत से श्री पार्श्वनाथ जैन चिकित्सालय व शोध संस्थान ब्यावर का निर्माण हुआ, यह संस्थान मानव मात्र की सेवा कर रहे हैं। महासती जी सौम्य, मधुर, सरल, मानस, अक्षम्य उत्साह दृढ़ मनोबल व असीम साहस, स्पष्ट व निर्भीक जीवन शैली सरीखे गुणों से युक्त रही।

ईस्वी सन् 2009 में किडनी रोग से ग्रस्त, कुछ मास अस्वस्थ रहने के बाद 22 अप्रैल 2009 को 87 वर्ष की आयु में महावीर कॉलोनी स्थित महावीर भवन, अजमेर में प्रातः 4 बजे जावज्जीवन संथारा ग्रहण कर लिया, 4 बजकर 20 मिनट पर अंतिम सांस ली। समस्त वर्गों के हजारों नर नारियों ने इनकी महाप्रयाण यात्रा में भाग ले कर इन्हें अपनी अंतिम श्रद्धांजलि दी। महासाध्वी श्री उमराव कंवर जी के महाप्रयाण पर श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रमण संघ के चतुर्थ पट्टधर आचार्यश्री शिव मुनि जी ने कहा था- महासाध्वी जी से मेरा मिलन राजस्थान विचरण व मध्यप्रदेश में हुआ, आप एक महान साध्वी थी, आपने अपने जीवन में कश्मीर तक भारत का भ्रमण किया। जब मेरा आप से मिलन हुआ तो मैंने आपके समक्ष अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत की, कि मुझे भगवान महावीर की आत्म साधना चाहिए, उसी की खोज में मैं विहार रत हूं, तो आपने मुझे साधना के कुछ बिन्दुओं से परिचित करवाया। आपकी साधना के प्रति विशेष लगन थी। आप सरलमना, समतामूर्ति महासाध्वी थी। आपके देवलोकगमन से श्रमण संघ में एक अपूरणीय क्षति हुई है, जिसे श्रमण संघ कभी पूर्ण नहीं कर पाएगा। महासाध्वी जी की आत्मीयता, सहृदयता, विनयशीलता, गुणग्राहकता, कर्त्तव्य परायणता, व्यवहार कुशलता सदैव स्मरण रहती है। आप का जीवन जप, तप, स्वाध्याय, मौन, ध्यान से परिपूर्ण रहा है।

NO REGISTRATION FEE Send us your details so that we can find a suitable match for you!

Finding a perfect match for you...

Jain Matrimonial, Hoshiarpur

Contact

Mr. Gaurav Jain +91 9876359120

Mrs. Neelu Jain +91 9988364684

www.facebook.com/freejainmatrimonial

साध्वी उमराव कंवर जी 'अर्चना' पर डाक टिकट व डाक टिकट का डिज़ाईन : 30 अप्रैल 2011 को भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा एक स्मारक डाक टिकट साध्वी उमराव कंवर जी 'अर्चना' के चित्र वाला इनके स्वर्गवास होने के 2 साल बाद ही जारी किया गया। यह भारत वर्ष के पिछले 160 वर्षों से भी अधिक पुराने डाक विभाग के इतिहास में प्रथम अवसर है जब किसी जैन साध्वी के चित्र वाला डाक टिकट जारी किया गया।

बिना जल चिन्ह वाले इस बहुरंगी डाक टिकट की एक साईड एक गोलाकार आकार में साध्वी उमराव कंवर जी 'अर्चना' का चित्र है, तथा सामने इनकी समाधि का चित्र है। समाधि के ऊपर 'अर्चनाधाम' लिखा है। डाक टिकट के नीचे हिन्दी व अंग्रेजी में उमराव कंवर जी 'अर्चना' लिखा है।

500 पैसे मूल्य वाली इस डाक टिकट को नेनु गुप्ता ने डिज़ाईन किया है, इसे वेट ऑफसेट मुद्रण प्रक्रिया द्वारा एस. पी. पी. हैदराबाद से छपवाकर 4 लाख संख्या में जारी किया गया था। देशभर में फैले हुए डाक विभाग के फिलाटेलिक ब्युरो तथा फिलाटेलिक काऊंटरों के माध्यम से 3 लाख़ डाक टिकट जारी किए गए थे तथा केवल जयपुर जी.पी.ओ से एक लाख डाक टिकट वितरण किए गए थे। इस डाक टिकट का परिचय इंग्लैंड से छपने वाले स्टेनले गिब्णस केटालाग में **S.G No. 2698** पर दिया गया है।

श्री महावीराय नमः

THE ORIGINAL ® DARVIN SINCE 1968

® SHiMPi R.T.M. 391699-B

Free Wheels

A PREMIER NAME IN QUALITY BICYCLE COMPONENTS

Gemko Thermo Mechaniks (Pvt) Ltd.

Sumeet Supertech (India)

B-20, Phase-II, Focal Point, Ludhiana-10

Phone : (O) 2670012,5019833,98726-06565 Fax : 91-161-5046833

e-mail : sumeetjn1@yahoo.co.in

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-32

रक्षा विज्ञान के आलोक स्तम्भ-डा. डी.एस. कोठारी (जैन)

-सुरेश जैन

अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष, मानवतावादी वैज्ञानिक डा. डी.एस. कोठारी (डा. दौलत सिंह कोठारी जैन) का जन्म 6 जुलाई 1906 को उदयपुर के एक मध्यम जैन परिवार में स्कूल शिक्षक श्री फतेह लाल कोठारी के घर पर हुआ। युवावस्था में ही सन् 1918 में जब श्री फतेह लाल कोठारी की आयु केवल 38 वर्ष की थी, उनका देहांत हो गया। उस समय बालक दौलत सिंह कोठारी की आयु मात्र 12 वर्ष थी तथा यह अपने पांच बहन-भाइयों में सबसे बड़े थे। इनका पालन-पोषण इनकी माता जी ने किया जो कि एक धर्म परायण व उदार महिला थीं। घर में आर्थिक तंगी आने के बावजूद वह हर समय जरूरतमंदों की सहायता करने को तैयार रहती थीं। दौलत सिंह कोठारी पर अपनी मां का बड़ा प्रभाव था।

उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा उदयपुर में ही प्राप्त की, इसके बाद इनके पिता के मित्र सर सायर मल बाफना जो उस समय इंदौर राज्य के मुख्यमंत्री थे, उन्होंने अपने बच्चों के साथ ही मैट्रिक तक पढ़ाई करने के लिए इन्दौर बुला लिया। दौलत सिंह कोठारी ने 1922 में महाराजा शिवाजी राव हाई स्कूल इंदौर से मैट्रिक बड़ी योग्यता के साथ पास की व आगे कालेज में पढ़ने के लिए वापस उदयपुर आ गए। वह 1924 में इंटर की परीक्षा में सारे राजपूताना बोर्ड में प्रथम रहे। इन्हें आगे पढ़ने के लिए मेवाड़ के महाराज ने 50/- रुपए प्रतिमाह की छात्रवृत्ति प्रदान की, यह सन् 1924 में बड़ी अच्छी राशि होती थी। इसके बाद उन्होंने 1926 में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से बी.एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रख्यात भौतिक वैज्ञानिक श्री मेघनाद साहा के मार्गदर्शन में 1928 में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से मैरिट के साथ एम.एससी. की उपाधि उन्होंने प्राप्त की तथा वायरलेस जिसका नया नाम इलैक्ट्रानिक्स है में विशेषज्ञता प्राप्त की।

उत्कृष्ट शैक्षिक रिकार्ड के कारण दौलत सिंह कोठारी को इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के भौतिकी विज्ञान में प्रदर्शक के रूप में नियुक्त किया गया। दो वर्ष बाद वह संयुक्त प्रांत की छात्रवृत्ति तथा मेवाड़ राज्य सरकार से प्राप्त ब्याज मुक्त 3500/- के ऋण से उच्च शिक्षा के लिए 1930 में इंगलैंड चले गए। कैवेडिश लैबोरेटरी, कैम्ब्रिज में इन्होंने अर्नस्ट रुथरफोर्ड के मार्गदर्शन में अपनी पी.एचडी. पूरी की।

1934 में डा. डी.एस. कोठारी ने रीडर और भौतिक विज्ञान के अध्यक्ष के रूप में दिल्ली यूनिवर्सिटी में कार्यभार ग्रहण किया, भौतिक विज्ञान में उन्होंने कई तरह के बदलाव किए, 1942 में इनको फिजिक्स का प्रोफैसर नियुक्त किया गया। उन्होंने प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों की स्थापना की तथा व्याख्यान देने के लिए प्रख्यात भौतिक विज्ञानियों को आमंत्रित किया, दिल्ली यूनिवर्सिटी में एम.एससी. पाठ्यक्रम शुरू किया। उन्होंने भौतिक विज्ञान और खगोल भौतिकी की विभिन्न शाखाओं में अनेक शोध पत्र भी प्रकाशित

किए। दाब आयनीकरण (Pressure Ionisation) पर किए गए उनके शोध कार्य की बड़ी प्रशंसा की गई तथा विविध अनुप्रयोगों की खोज की गई। संसार के प्रमुख वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंसटीन ने डा. कोठारी को कहा था कि बिना किसी पूर्व कल्पना के मैत्री तथा प्यार के साथ कार्य करते जाओ, कामयाबी मिलने पर आप को अपने आप खुशी मिलेगी। इस बात को डा. कोठारी अक्सर दोहराते रहते थे। भारत की आजादी के बाद सन् 1948 में डा. कोठारी की जिन्दगी में एक सुनहरा अवसर आया, जब इनको भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय ने उन्हें प्रथम वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में नियुक्त किया व 13 वर्ष वे इसी पद पर बने रहे। अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने रक्षा विज्ञान संगठन के तत्वावधान में कई प्रयोगशालाओं की स्थापना की। इनमें

1) Institute of Armament Studies, Pune.
2) Naval Dockyard Laboratory, Mumbai.
3) Indian Naval Physical Laboratory, Kochi.
4) Centre for Fire Research, Delhi.
5) Solid State Physics Laboratory, Delhi.
6) Defence Food Research Laboratory, Mysore.
7) Defence Institute of Psychological & Allied Science, Chennai.
8) Directorate of Psychological Research, New Delhi.
9) Defence Electronics and Research Laboratory, Hyderabad.
10) Scientific Evaluation of Group, Delhi.
11) Technical Ballistic Research Laboratory, Chandigarh.

ये प्रमुख हैं। सन् 1961 में डा. डी.एस. कोठारी की यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उन्होंने शिक्षा क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया; 1964 में भारत सरकार ने इन्हें भारतीय शिक्षा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया। उन्होंने भारत सरकार की केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षा और चयन प्रक्रिया के पुनर्गठन में महती भूमिका निभाई। राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिभा खोज कार्यक्रम तथा परवर्ती राष्ट्रीय प्रतिभा खोज कार्यक्रम उनकी ही विचार दृष्टि की देन है। दो कार्यकाल के लिए वह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुलाधिपति रहे। 1974 में उन्हें संघ लोक सेवा आयोग की भर्ती नीति एवं चयन प्रणाली संबंधी समिति के अध्यक्ष के रूप में भी नियुक्त किया गया। डा. कोठारी का जैन धर्म के प्रति बड़ा सम्मान था। वह सच्चाई और अहिंसा के पुजारी थे। उनके मन में अन्य धर्मों के प्रति भी बड़ी उदारता थी। सबसे अधिक वह विवेक में विश्वास रखते थे। उनकी पुस्तक Nuclear Explosion and Their Effects (ऐटमी धमाके और उनका असर) जो उन्होंने डा. होमी भाभा के साथ मिलकर लिखी थी, इस विषय पर उनकी बहुत बड़ी देन है, इस पुस्तक का जर्मन, रूसी तथा जापानी भाषाओं में भी अनुवाद किया गया है।

उनके व्याख्यानों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं उनमें Atom and Self, Knowledge and Wisdom व Education and Character Building प्रमुख हैं। विज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्रों में उनके योगदान के लिए अनेक सम्मानों और पुरस्कारों के अलावा इन्हें प्रशासकीय सेवा के क्षेत्र में सन् 1962 में पद्म भूषण, 1966 में एस.एस. भटनागर मेडल, 1973 में मेघनाद साहा मेडल, 1975 में पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया। हमारे देश के अनेक गौरव पुरुषों में एक, बड़े विनम्र, उच्च कोटि के चिंतक, सादगी

के प्रतीक, जिन्होंने अपने जीवन में अपरिग्रह सिद्धांत पूरी तरह समाविष्ट किया हुआ था, किसी भी समस्या का तुरंत हल निकालने की समझ का विलक्षण गुण रखने वाले डा. दौलत सिंह कोठारी का 4 फरवरी 1993 को निधन हो गया।

भारत के गौरव डा. डी.एस. कोठारी पर डाक टिकट : डा. दौलत सिंह कोठारी के 105वें जन्म दिवस पर 6 जुलाई 2011 को उनके चित्र वाली एक स्मारक डाक टिकट भारत सरकार के डाक विभाग ने जारी की थी। नई दिल्ली में भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के सभागार में आयोजित एक भव्य कार्यक्रम में जिसमें दिल्ली की मुख्यमंत्री, दिल्ली विश्वविद्यालय के उप-कुलपति, डा. कोठारी के अनुगामी व सहयोगी रहे प्रोफैसरों एवं बुद्धिजीवियों, डाक विभाग के उच्चाधिकारियों, श्री आल इंडिया श्वेताम्बर जैन कांफ्रेंस के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री केसरीमल बुरड़ (जैन) जैन कांफ्रेंस के सदस्यों, बड़ी संख्या में जैन समाज के चारों सम्प्रदायों के गण्यमान्य व्यक्तियों, डा. कोठारी के ज्येष्ठ पुत्र प्रो. लक्ष्मण सिंह कोठारी एवं पारिवारिक सदस्यों तथा विशिष्ट अतिथियों की उपस्थिति में इस डाक टिकट का विमोचन किया गया। गहरे नीले आकाश की पृष्ठभूमि के आगे गोल चक्र में डा. दौलत सिंह कोठारी का चित्र है तथा वह दूर आकाश में हो रही खगोल विज्ञान की घटना को देख रहे हैं। टिकट के नीचे हिन्दी तथा अंग्रेजी में डा. डी.एस. कोठारी लिखा है। इस 500 पैसे मूल्य की डाक टिकट को वेट ऑफसेट मुद्रण प्रक्रिया से छपवाकर तीन लाख संख्या में जारी किया गया था। इसका विवरण इंगलैंड से छपने वाले सटेनले गिब्बस केटालाग में एसजी नंबर 2705 पर दिया गया है। कुछ ही समय पहले डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (भारत के पूर्व राष्ट्रपति) की प्रकाशित हुई पुस्तक Ignited Minds में उन्होंने लिखा कि डा. डी.एस. कोठारी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक थे तथा हर व्यक्ति चाहे वह छोटा या बड़ा है उसकी उन तक आसानी से पहुंच थी।

वधू चाहिए

Suitable match for Duggar Jain boy D.O.B. 5.11.1986 at Baraut (U.P.), 5'-11", M.Com., Own Business. Contact No. : 097198-64457, 090452-17917.

Rajan Metal Industries

Mfg. of : Rajan & UTI ISI Marked Valves & Cocks

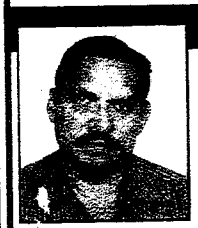

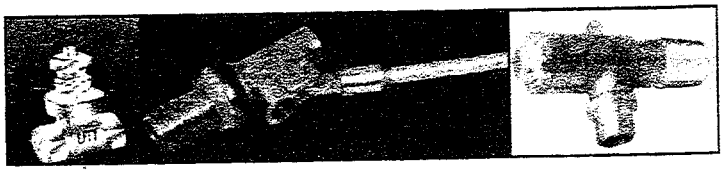

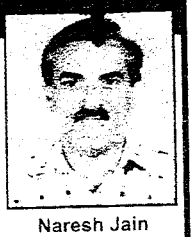

Rakesh Jain
99145-15211

M-35, Industrial Area, Jalandhar-144 004 Tel : 0181-3255211,2290743

Naresh Jain
93572-55211

पर्यटन स्थल

मथुरा उत्तरप्र
स्थल के रूप में प्र
केंद्र रहा है। भारत
महत्त्वपूर्ण योगदा
स्वामी हरिदास,
आत्माओं से इस
से भी जाना जात

मथुरा का
विख्यात नगरी
संबोधित किय
हिमालय और
भारतीय संस्कृ
भारतीय संस्कृ
आदि कितने
समावेश न कि
उत्तर-पश्चिम
रामायण में म
है। इस नगर
काल में बस
तक इस नग

शहर
में गोकर्णेश्व
को मथुरा
एक कंका
कंकाली
से छूटका
तथा देवक
तोशल उ
वैकुंठ तं

विम

डाक टिकटों पर जैन इतिहास क्रमांक-33

महान तपस्वी आचार्य श्री जयमल जी महाराज

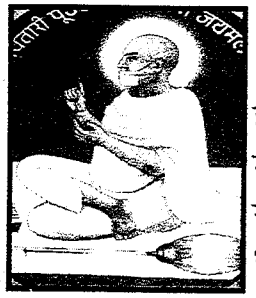

-सुरेश जैन, लुधियाना

कुछ व्यक्ति धरती पर विलक्षण गुण लेकर जन्म लेते हैं। इनमें श्री जयमल जी एक थे जो भारत की भूमि पर 18वीं शताब्दी में हुए हैं। उनका जन्म राजस्थान के जोधपुर क्षेत्र में मेड़ता के लांबिया ग्राम में श्री मोहनदास समदड़िया मेहता की धर्मपत्नी श्रीमती महिमा देवी की कोख से वि.सं. 1765 सन् 1708 में हुआ था। वह एक मेधावी, सौम्य स्वभाव व दयाशील बालक थे, इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी तथा स्मरण शक्ति बड़ी तेज थी। युवा होने पर जयमल जी ने अपने पारिवारिक व्यवसाय में अपने पिता का हाथ बंटाना शुरू कर दिया और इसी दौरान इनकी शादी 22 वर्ष की आयु में रीयां बड़ी निवासी श्री शिवकरण मूथा की सुपुत्री लक्ष्मी देवी से हो गई। गौने से पूर्व एक बार वे अपने मित्रों के साथ व्यापार के दृष्टिगत मेड़ता शहर आए। शहर आकर जब उन्होंने पाया कि बाजार बंद है तो वे संत दर्शन एवं प्रवचन श्रवण की अभिलाषा लिए मित्रों सहित स्थानक भवन पहुंच गए। संयोगवश धार्मिक क्षेत्र में इनकी मुलाकात स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री धर्मदास जी महाराज के पाट के पूर्व आचार्य भूधर जी से हुई, उनके एक ही प्रवचन जो उन्होंने सेठ सुदर्शन की कथा पर आधारित दिया, ने जयमल जी में लौकिकता का परित्याग करने की इच्छा जागृत कर दी, प्रवचन सुनने के बाद उन्होंने संसार छोड़कर दीक्षा लेने की ठान ली, उस समय उनकी शादी हुए केवल 6 मास ही हुए थे। 23 वर्ष की युवावस्था में इन्होंने ई. सन् 1731 वि.सं. 1787 मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीय को श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन परम्परा के अनुसार मेड़ता में आचार्यश्री भूधर जी महाराज से श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली। भूधर जी ने युवा जयमल की क्षमता को समझा और यह भी भांप लिया कि वह समाज को बहुमूल्य योगदान दे सकते हैं।

जयमल जी ने एक प्रहर (केवल 3 घंटे) खड़े-खड़े प्रतिक्रमण कंठस्थ कर लिया, दीक्षा लेने के मात्र 3 वर्ष में ही इन्होंने सम्पूर्ण बत्तीस आगमों (जैन धर्म ग्रंथों) को कंठस्थ करके एक विलक्षण प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत किया। इन्होंने अपने समूचे जीवन काल में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र के तीन रत्नों को पिरोते हुए इन पर आचरण किया। इन्होंने वेदों, वेदांतों, पुराणों, बौद्ध एवं अन्य विभिन्न धर्म ग्रंथों का भी अध्ययन किया।

जयमल जी ने अपनी जिन्दगी में बड़ी-बड़ी कठिन तपस्या की। इनमें 16 वर्ष एकान्तर (एक दिन व्रत तथा एक दिन भोजन ग्रहण करना), 16 वर्ष बेले बेले तप (दो दिन व्रत तथा एक दिन भोजन ग्रहण करना), 20 मास क्षमण तप (20 बार पूरा एक-एक महीना भोजन ग्रहण नहीं करना), 10 द्वि मास क्षमण तप (10 बार दो-दो महीने भोजन ग्रहण नहीं करना), 40 अठाई तप (40 बार आठ-आठ दिन भोजन ग्रहण नहीं करना), 90 दिन अभिग्रहयुक्त तपस्या (मन में जो धारण किया है वह भिक्षा में मिले तो खाना, नहीं तो उस दिन का व्रत रहेगा)।

1 बार चौमासी तप (चार महीने भोजन नहीं करना), 1 बार छः मासी तप (छः महीने भोजन नहीं

, लुधियाना

रौरान इनकी
गौने से पूर्व
ने पाया कि
पहुंच गए।
राज के पाट
ारित दिया,
होंने संसार
युवावस्था
के अनुसार
की क्षमता

के मात्र 3
प्रतिभा का
चरित्र के
धर्म ग्रंथों

न व्रत तथा
, 20 मास
ार दो-दो
, 90 दिन
रहेगा)।
जिन नहीं

करना), 2 वर्ष तक तेले-तेले पारणा 3 दिन व्रत तथा एक दिन भोजन ग्रहण करना), 3 वर्ष 5 के पारणे 5 की तपस्या (पांच दिन भोजन ग्रहण नहीं करना), 50 वर्ष तक आडा आसन नहीं करना (ई. सन् 1747 से ई. सन् 1796 तक) यानी 50 वर्ष तक कभी लेटकर और पांव पसार कर निद्रा नहीं ली।

ऊपर लिखे हुए व्रतों के दिनों में केवल प्रासुक पानी (गर्म पानी को ठंडा किया हुआ) लेते थे।

राजपूताना (अब राजस्थान) में यतियों का बड़ा जोर था, उन्होंने अपने मठ कायम किए हुए थे तथा अपने दबदबा वाले क्षेत्रों में वह किसी जैन संत को घुसने नहीं देते थे, बल्कि मारने से भी गुरेज नहीं करते थे। जयमल जी ने आठ दिन तक निराहार रहते हुए बीकानेर में 500 यतियों को धर्म चर्चा में परास्त कर सदा के लिए जैन संतों के लिए सर्वप्रथम क्षेत्र खोला। इसके बाद पीपाड़, नागौर, जैसलमेर, सांचौर, खींचन, लाडणू, सिरोही, जालोर आदि अनेकानेक क्षेत्रों में धर्म चर्चा में परास्त कर क्षेत्र खोले। लाडणु में शुद्ध साधुत्व पर चर्चा हुई, जयमल जी ने यति ज़ी को निरुत्तर कर दिया, मध्यस्थ महंत मुरली मोहन शास्त्री ने इन्हें विजयी घोषित कर चर्चा चूड़ामणि के पद से सम्मानित किया।

नागोर में नागोर नरेश महाराज श्री बरवत सिंह जी की कचहरी में पुरोहित ब्रज बिहारी शास्त्री की मध्यस्थता में यति गुमान जी के साथ शास्त्रार्थ हुआ-अंत में यति गुमान जी ने क्षमा मांगते हुए पराजय स्वीकार कर ली, तब जयमल जी को शास्त्रार्थ शिरोमणि की उपाधि से सम्मानित किया गया।

जयमल जी एक समाज सुधारक भी थे। उन्होंने महिला-उत्थान के लिए कार्य किया, उन्होंने अपने प्रवचनों के माध्यम से बालिका शिशु हत्या, सती प्रथा, बाल विवाह के विरुद्ध एवं महिला सशक्तिकरण के मुद्दे उठाए। परिणाम स्वरूप उनके अनुयायियों की सोच में धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ। वह सबको एक-समान मानते थे। उन्होंने छुआछूत एवं गुलामी के उन्मूलन के लिए कार्य किया। वि.सं. 1805 ई सन् 1748 को अक्षय तृतीया के पावन प्रसंग पर आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

जयमल जी साहित्यिक गुणों के भी धनी थे। उन्होंने आध्यात्मिक एवं सामाजिक संदेशों को अपनी कविताओं एवं अन्य रचनाओं के माध्यम से प्रचारित करने में सहायता की। ई. सन् 1750 में उन्होंने बड़ी साधु वंदना के रूप में अद्वितीय मंगलकारी रचना की, इसके अतिरिक्त 250 से अधिक काव्य कृतियों की रचना की। इन रचनाओं ने न केवल तत्कालीन इतिहास को दर्ज किया बल्कि सभी उम्र के लोगों को सदाचार के पथ का अनुसरण करने के लिए भी प्रेरित किया।

धर्म क्षेत्र में उन्होंने 700 भव्यात्माओं को दीक्षा दी जिनमें इनके 51 शिष्य 200 प्रशिष्य तथा 449 साध्वी

शुद्ध खाओ स्वस्थ रहो

JAIN SWEETS

(SAMANA WALE)

स्पैशल : चना-भटूरा, पालक-पनीर, आलू-चना-पुरी व शादी की भाजी

Deals in : All kinds of Sweets, Milk, Curd, Cheese Always Fresh.

Spl. Arrangements for : Marriages, Parties & Other Functions

70 Ft. Road, Near Shiv Mandir, Sunder Nagar, Ludhiana

AJAY JAIN
98780-46096

समुदाय हैं। स्वाध्याय-सेवा-शिक्षा इनके लक्ष्य थे। जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, जयपुर, नागोर, जैसलमेर आदि के राजा-महाराजाओं एवं दिल्ली के बादशाह मोहम्मद शाह तथा उनके शहज़ादे को प्रतिबोध देकर सुमार्गी बनाया। अपने अंतिम समय से 2 वर्ष पूर्व ही इन्होंने अपना आचार्य पद अपने उत्तराधिकारी को सौंप कर खुद अंतरध्यान साधना में लीन हो गए। विक्रमी संवत् 1853 ई. सन् 1796 में संथारा ग्रहण कर लिया था। 31 दिन के संथारे के बाद वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को 87 वर्ष 8 महीने की आयु में इनका महाप्रयाण हो गया। जयमल जी के जीवन एवं शिक्षा से लोग पीढ़ी दर पीढ़ी प्रेरणा ग्रहण कर रहे हैं।

आचार्यश्री जयमल जी महाराज पर डाक टिकट : 25.09.2011 को भारत सरकार के डाक विभाग ने एक 500 पैसे मूल्य की स्मारक डाक टिकट को भारतीय प्रतिभूति मुद्रणालय, नासिक के वेट ऑफसेट मुद्रण प्रक्रिया द्वारा छपवा कर छः लाख संख्या में जारी किया था। डाक टिकट की पृष्ठ भूमि गहरे नीले रंग की है तथा इस डाक टिकट को पीले-लाल तथा नीले रंग को मिलाकर छापा गया है। इसमें आचार्य जयमल जी महाराज का बैठी हुई मुद्रा में प्रवचन करते हुए चित्र दर्शाया गया है। डाक टिकट के नीचे जयमल जी महाराज हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा में लिखा हुआ है। इस डाक टिकट का विवरण इंग्लैंड से छपने वाले स्टेनले गिब्बस केटालाग में एसजी नंबर 2721 पर दिया गया है। इस डाक टिकट की पृष्ठभूमि पर आसमानी रंग में जैन प्रतीक छपे हैं तथा आचार्य जयमल जी महाराज के बाईं ओर औघा पड़ा है। ([redacted])

NAVEEN JAIN
98156-56311

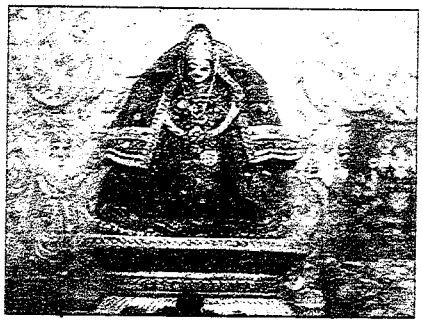

माता चक्रेश्वरी देवी जी के
चरणों में शत-शत नमन वंदन

NIKUNJ JAIN
98761-56311

ORIENT
CERAMICS
we cover up beautifully

WALL &FLOOR TILES
ELEVATION TILES
SANITARY WARE & C.P. FITTINGS

Deals in
All Types of Wall
& Floor Tiles

WORLD OF TILES®

Authorised distributors for ORIENT BELL LTD.

Karnail Singh Nagar, Pakhowal Road, Opp. Shaheed Bhagat Singh Nagar,
Ludhiana Ph : 0161-4603123 E-mail : worldoftiles.ludhiana@gmail.com